'प्राथमिक शिक्षक' राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है, शिक्षकों और संबद्ध प्रशासकों तक केंद्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबंधित जानकारियाँ पहुँचाना, उन्हें कक्षा में प्रयोग में लाई जा सकने वाली सार्थक और संबद्ध सामग्री प्रदान करना और देश भर के विभिन्न केंद्रों में चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों आदि के बारे में समय पर अवगत कराते रहना। शिक्षा जगत् में होने वाली गतिविधियों पर विचारों के आदान-प्रदान के लिए भी यह पत्रिका एक मंच प्रदान करती है।

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त किए गए विचार लेखकों के अपने होते हैं। अत: यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक चिंतन में परिषद् की नीतियों को ही प्रस्तुत किया गया हो। इसलिए परिषद् का कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

संपादकीय मंडल (अकादमिक)

लता पाण्डे

इंदु कुमार *रमेश कुमार*

प्रकाशन मंडल

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : *अशोक श्रीवास्तव*

मुख्य उत्पादन अधिकारी : *कल्याण बनर्जी*

मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*

मुख्य प्रबंध अधिकारी : *गौतम गांगुली*

संपादक : *रेखा अग्रवाल*

सहायक उत्पादन अधिकारी : *अब्दुल नईम*

आवरण चित्र

प्रिया, VIII बी, केंद्रीय विद्यालय
जे.एन.यू, एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस, नयी दिल्ली

एन सी ई आर टी के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 **फोन : 011-26562708**

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बैंगलुरु 560 085 **फोन : 080-26725740**

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 **फोन : 079-27541446**

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 **फोन : 033-25530454**

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 **फोन : 0361-2674869**

मूल्य एक प्रति ₹ 65.00 **वार्षिक ₹ 260.00**

कविता

धापू

के.आर.शर्मा*

छह–सात महीने की हुई धापू
धीरे–धीरे बैठना सीख गई!

दस–ग्यारह महीने की हुई धापू
धीरे–धीरे चलना सीख गई!

दौड़ती–गिरती–उठती–दौड़ती
तुतलाती ज़बान में बतियाती धापू!

धापू बकरी को कुत्ता समझने की गलती नहीं करती
वह तो गली–मोहल्ले भर की पहचान रखती !

एक दिन, धापू स्कूल गई
स्कूल में खूब खेलती, मज़े करती !

मास्साब धापू के साथ किस्सागोई करते
कंकड़ों, बीजों, पत्तों, फूलों, कागज़ के टुकड़ों में रमती !

कभी किताबों को उलट–पलट करती
कभी मुँडेर पर सँभलते हुए चलती !

कभी किताबों में झाँकती
कभी रंग–रोगन करती !

मास्साब मन–ही–मन सोचते
बच्ची कितनी काबिल है !

मास्साब सोचते
कहीं सीखने की ताकत कुचल न जाए !

* जशोदा नरोत्तम पब्लिक चैरिटी ट्रस्ट, नगरिया रोड, बलिया देव मंदिर के पास, धरमपुर, जिला–बलसाड (गुजरात), पिन–396050

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा एना प्रिन्टो ग्राफिक्स प्रा.लि., 347–के, उद्योग केन्द्र एक्स–II, ग्रेटर नोएडा– 201306 द्वारा मुद्रित।

प्राथमिक शिक्षक

वर्ष 37 | अंक 2 | अप्रैल 2013

इस अंक में

संवाद — **3**

विशेष

1.	बच्चों को समझने का करें प्रयास	किरन देवेंद्र	5

लेख

2.	बाल साहित्य-उदासीनता की बदलती रंगतें	शारदा कुमारी	9
3.	बच्चों के लिए कैसे चुनें किताब?	अक्षय कुमार दीक्षित	15
4.	बाल साहित्य के झरोखे से	उषा शर्मा	27
5.	बाल साहित्य का शैक्षिक अवदान	रामनिहोर तिवारी	41
6.	शाला में बाल साहित्य का उपयोग	भगवती प्रसाद गेहलोत	47
7.	बाल साहित्य और भाषा शिक्षण	मनोहर चमोली 'मनु'	51

अनुभव

8.	क्यों दूर हैं बच्चे किताबों से	लता पाण्डे	56

पुस्तक के पन्नों से

9.	शिक्षक हों तो	गिजुभाई बधेका	60

विद्यया ऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

विद्या से अमरत्व प्राप्त होता है।

परस्पर आवेष्टित हंस राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) के कार्य के तीनों पक्षों के एकीकरण के प्रतीक हैं– (i) अनुसंधान और विकास, (ii) प्रशिक्षण, तथा (iii) विस्तार। यह डिज़ाइन कर्नाटक राज्य के रायचूर ज़िले में मस्के के निकट हुई खुदाइयों से प्राप्त ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के अशोकयुगीन भग्नावशेष के आधार पर बनाया गया है।

उपर्युक्त आदर्श वाक्य *ईशावास्य उपनिषद्* से लिया गया है जिसका अर्थ है– विद्या से अमरत्व प्राप्त होता है।

शोध

10.	अहमदाबाद के प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्वप्रेरणा का अध्ययन	प्रवीण वी. गुंजाल	69

बालमन कुछ कहता है

11.	मुझे दोस्त पसंद हैं	गुंजन	73
12.	मेरा स्कूल बहुत बड़ा है	उत्कर्ष द्विवेदी	74

प्राथमिक शिक्षक पत्रिका के बारे में 75

कविता

13.	धापू	के. आर. शर्मा	

संवाद

बच्चों में पढ़ने की ललक नैसर्गिक रूप से होती है। रंग-बिरंगी किताब सामने देखते ही नन्हा बच्चा उसे उठाता है, उसे उलटता-पलटता है, चित्रों से बातें करता है। यहीं से शुरूआत होती है उसके बाल साहित्य के संसार में कदम रखने की। लेकिन यही बच्चा जब स्कूली दुनिया में कदम रखता है तो पढ़ने की चाहत धीरे-धीरे कम होने लगती है। इसके कई कारण हैं, जिनमें से एक बड़ा कारण यह भी है कि विद्यालय में उसे पढ़ने के लिए पाठ्यपुस्तक के अलावा और कुछ भी नहीं मिलता।

विगत कुछ समय में सबका ध्यान नन्हे पाठकों में पढ़ने के कौशल के विकास की ओर गया है। बाल साहित्य को लेकर आमजन में पसरी उदासीनता के रवैये में भी बदलाव आया है। बाल साहित्य का उपयोग न केवल भाषा की कक्षा में किया जा सकता है, बल्कि बाल साहित्य अन्य विषयों को सिखाने का भी रोचक माध्यम बन सकता है। बाल साहित्य में बच्चों की पसंद का सभी कुछ तो है- उनकी मनपसंद बातें, रंग-बिरंगे चित्र, कल्पना का अनूठा संसार। बस ज़रूरत है बाल साहित्य के झरोखे से बालमन को पहचानने की।

प्रस्तुत अंक में बाल साहित्य पर विशेष रचनाएँ दी जा रही हैं। आज हर अभिभावक चाहता है कि उनका बच्चा कहानी, कविताओं की किताबों की दुनिया की सैर करे। कुछ समय पहले तक बाल साहित्य को लेकर जो एक प्रकार की उदासीनता का सा माहौल था उसमें अब बदलाव आया है। पुस्तक मेलों के दौरान बच्चों की किताबों के स्टॉल में लगी भीड़ इसकी गवाह है। बाल साहित्य के प्रति जनसाधारण की जागरूकता को बयाँ कर रहा है लेख **बाल साहित्य-उदासीनता की बदलती रंगतें।**

आज हर अभिभावक चाहता है कि उसके बच्चे अपनी मनपसंद किताबें पढ़ें। हर स्कूल में भी पुस्तकालय है। लेकिन समस्या यह उठती है कि बच्चों के लिए किस प्रकार की किताबें चुनी जाएँ? इसी समस्या का समाधान कर रहा है लेख- **बच्चों के लिए कैसे चुनें किताब?** *बच्चे सृजनशील होते हैं। उनकी सहज अभिव्यक्ति किस प्रकार छोटी-छोटी कविताओं के रूप में सामने आती है, बाल साहित्य के झरोखे से नन्हे-मुन्ने क्या-क्या देखते हैं, वर्तमान में विभिन्न प्रकाशकों द्वारा किस प्रकार का बाल साहित्य सामने लाया जा रहा है, इन्हीं सबकी झलक मिलेगी लेख-* ***बाल साहित्य के झरोखे से*** *में। बाल साहित्य बच्चों को तो आनंदित*

करता ही है, शिक्षक भी कक्षा में सीखने-सिखाने के दौरान बाल साहित्य का उपयोग कर सकते हैं। कैसे? यह जानने के लिए पढ़िए लेख- **बाल साहित्य और भाषा शिक्षण।** *बच्चे रोचक कहानी कविताओं की किताबें पढ़ना चाहते हैं, लेकिन क्या हम उन्हें ऐसा माहौल दे पाते हैं? इस बात का जवाब दे रहा है लेख-* **क्यों दूर हैं बच्चे किताबों से।**

कितनी भी अच्छी किताबें हम कक्षा में क्यों न ले आएँ, लेकिन बच्चों का अगर शिक्षिका से स्नेहिल नाता न हो, तो बच्चे किताबों से दूर ही रहेंगे। शिक्षिका द्वारा दिया गया प्यार, आज़ादी, भरोसा बच्चों को शिक्षिका के पास लाएगा। वे निश्चिंत होकर आत्मविश्वास से किताबें पढ़ें इसके लिए कक्षा में पढ़ाने के साथ यह भी ज़रूरी है कि बच्चों को समझने का प्रयास किया जाए। इस अंक में विशेष लेख दिया जा रहा है- **बच्चों को समझने का करें प्रयास।** *बच्चों को कक्षा में भयरहित वातावरण मिलेगा तभी उनके स्वर मुखरित होंगे। पढ़ी गई किताबों पर भी वे बिना किसी झिझक के शिक्षक से तथा अपने साथियों से बातचीत करेंगे। किताबों की रोचक दुनिया में बच्चे ने एक बार प्रवेश कर लिया, तो उसे स्थायी पाठक बनते देर नहीं लगेगी। यही तो हम सब चाहते हैं।*

अकादमिक संपादक

विशेष 1

बच्चों को समझने का करें प्रयास

किरन देवेंद्र*

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 ने इस पहलू पर बल दिया था कि विद्यालय बच्चों का स्वागत करें। शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 बच्चों के प्रति भय, चिंता व सदमे से मुक्त कक्षाओं एवं विद्यालयों की हिदायत देता है। लेकिन आए दिन कक्षाओं में बच्चों के पिटने, उन पर अत्याचार होने की घटनाएँ देखने-सुनने को मिलती ही रहती हैं। कक्षा में बात करना, देर से आना, घर का काम न कर पाना इतना बड़ा गुनाह नहीं है कि उसके लिए बच्चे की पिटाई की जाए। आवश्यकता इस बात की है कि उसे प्यार से विश्वास में लेकर समझाया जाए। बच्चों को प्यार से समझाने पर आपके और बच्चों के बीच विश्वास और दोस्ती का नया रिश्ता शुरू होगा। बच्चे ज़िम्मेदार बन कर दिखाएँगे आपको शिक्षा के क्षेत्र में, खेलों में व अन्य प्रतिभाओं में तथा सक्षम होंगे बढ़ती हुई दक्षता के साथ।

एन.सी.ई.आर.टी. के महिला अध्ययन विभाग ने स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के एक प्रोफ़ेसर के साथ मिलकर बच्चियों की शिक्षा पर एक अध्ययन किया। मेहरौली के बालिका विद्यालय में पाइलेट स्टडी की गई जिसमें लड़कियाँ कक्षा एक से कक्षा बारहवीं तक पढ़ती थीं। इसी दौरान मुझे एक ऐसा अनुभव हुआ जिसने मुझे सतर्क कर दिया।

प्रिंसिपल ने एक दसवीं कक्षा में पढ़ रही बच्ची की पिटाई की और उसके पिता और हम सबके सामने उसका अपमान किया। बच्ची के पिता बहुत शर्मिंदा हो रहे थे और असहाय भी महसूस कर रहे थे। उन्होंने भी अपनी बच्ची को सभी के सामने पीटना शुरू किया।

मुझे यह सब देखकर मानसिक स्तर पर बहुत कष्ट हुआ। प्रिंसिपल की तो गलती थी ही परंतु पिता भी क्या सही थे? क्या पिता अपनी बच्ची को पिटाई व बेइज़्ज़ती के कहर से बचा नहीं सकते थे? पिता को एक बार हिम्मत ही तो जुटानी थी, अपनी बच्ची का साथ देने के लिए। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। बच्ची के मन में जो कष्ट था, उसके चेहरे पर दिखाई

* प्रोफ़ेसर *और अध्यक्ष*, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली-110016

दे रहा था। केवल मैंने प्रिंसिपल और पिता को रोकने का साहस किया। बच्ची की गलती उसके सम्मान के सामने बहुत छोटी थी। वह स्कूल में एक हफ्ते से बिना नहाए आ रही थी। मेरे मन में बार-बार प्रश्न आ रहे थे कि क्या पिता को स्कूल में बुलाना ज़रूरी था? क्या प्रिंसिपल खुद बच्ची को बात करके नहीं समझा सकती थी? कुछ दिनों के बाद ही बच्ची ने स्कूल में आना बंद कर दिया जिसका दुख आज तक है मुझे।

दक्षिणी दिल्ली के एक बड़े केंद्रीय विद्यालय में भी कुछ ऐसा ही अनुभव वर्ष 2011 में हुआ, जबकि 6-14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए शिक्षा का अधिकार कानून लागू हो चुका था। हम प्रिंसिपल के कमरे में बैठे थे, अचानक बहुत शोर हुआ। उनके दफ्तर में एक शिक्षक व कुछ बच्चे जो कक्षा ग्यारहवीं में पढ़ रहे थे, एक बच्चे को लेकर आए जो कक्षा ग्यारहवीं में ही पढ़ रहा था। प्रिंसिपल ने बच्चे को धमकाया, उस पर चिल्लाए और सच निकलवाने के लिए धमकी पर धमकी दी। आखिर में वे बोले, ''माली के बच्चे हो, झूठ बोलना तुम लोगों की आदत है''। यह बात मुझे इतनी बुरी लगी जिससे सँभल पाना मेरे लिए आज भी कठिन है।

16 जुलाई, 2010 को मैं अपने पति के साथ केलिंगपौंग में थी। हम दोनों को अखबारों में पढ़ कर और लोगों से सुन कर सदमा लगा कि एक आठवीं कक्षा में पढ़ रही बच्ची ने तीस्ता नदी में छलाँग लगा कर अपनी जान दे दी क्योंकि उसकी टीचर उसके माता-पिता को शिकायत लगाती रहती थी कि वह पढ़ाई में अच्छी नहीं है। स्कूल में टीचर से परेशान, घर में पिता की पिटाई व माता के कटाक्षों से तंग आकर उस बच्ची ने जीवन से हार मान ली। कैसा लग रहा है यह पढ़कर? अत्यंत कष्टदायक, है न!

5 मई, 2013 की सुबह सैर करते हुए कुछ बच्चों को कोच से फिटनेस ट्रेनिंग लेते देख मैं इतनी दुखी हुई कि मुझे सैर छोड़कर वहाँ रुकना पड़ा। कोच के हाथ में एक पतली लचीली पेड़ की छड़ी थी जिसे वे थोड़ी-थोड़ी देर में बच्चों के पांवों में ज़ोर से लगा रहे थे और लगातार कहते जा रहे थे ''जो बच्चा आँखें खोलेगा या ठीक से व्यायाम नहीं करेगा उसकी पिटाई होगी''। इन सभी बच्चों की उम्र 10 वर्ष से कम ही थी। पास में खड़े हर उम्र के पुरुष व महिलाएँ खुश होकर यह सब देख रहे थे। जब मैंने ऐतराज़ किया तो सभी को हैरानी हुई और उन्होंने मुझसे ही पूछ लिया ''क्या गलत हो रहा है यहाँ, बच्चों को ट्रेनिंग ही तो दे रहे हैं और इतनी मेहनत कर रहे हैं कोच''।

मैं क्या कहती और कैसे बताती उन्हें जो सुनना ही नहीं चाहते थे कि यह बच्चों के सम्मान के खिलाफ़ है। याद किया मैंने डा. गर्ड मुलर को जो कितनी सहनशीलता और संवेदनशीलता से हर मरीज़ को ट्रेनिंग करवाते हैं। यह उनका तरीका है जिसे हर समय ध्यान में रखते हैं एक्टिवऑर्थो के सभी फिज़ियोथेरेपिस्ट।

जब भी मैं इन हादसों से गुज़रती हूँ, मुझे याद आती है अपने पापा की जिन्होंने अपने

दफ्तर की व्यस्तता के बावजूद मेरे स्कूल की प्रिंसिपल और टीचर से अपना विरोध ज़ाहिर किया कि टीचर ने मुझ पर हाथ क्यों उठाया। मेरी गलती बहुत छोटी थी जिसे समझा कर टीचर मुझसे वह करवा सकती थी जो मैं नहीं करना चाहती थी। स्कूल की प्रिंसिपल को दफ्तर छोड़ते समय उन्होंने चेतावनी दी कि मेरे साथ ऐसा कभी दोबारा नहीं होगा। मुझे इतनी छोटी उम्र (10 वर्ष की) में यह एहसास हुआ कि पापा मेरी परवाह करते हैं और उन्हें मेरी भावनाओं व आत्मसम्मान की चिंता है। इससे मेरा आत्मविश्वास बढ़ा व कायम रहा। हर उस बच्चे के माता-पिता को उसके साथ हो रहे अन्याय की चाहे वह स्कूल में हो रहा हो या कहीं और, के विरोध में अपनी आवाज़ उठानी चाहिए ताकि कोई भी बच्चा विवश या मज़बूर महसूस न करे। उसे यह अहसास रहे कि कुछ भी हो जाए उसका साथ देने के लिए उसके माता-पिता हैं। इस तरह हर बच्चे का आत्मविश्वास बढ़ेगा और बढ़े हुए आत्मविश्वास के साथ हर बच्चा शुरू करेगा अपनी सफलता का सफ़र।

मैं अनेक प्रश्नों के उत्तर खोजती हूँ, अपने सहयोगियों से चर्चा करती हूँ कि आज जबकि शिक्षा के हक का कानून लागू हो चुका है जिसमें यह स्पष्ट कहा गया है कि बच्चों को विद्यालयों में भय, चिंता और सदमे से बचाना है, तो क्या ऐसे समय पर भी बच्चे डर-डर कर रहें कक्षाओं, विद्यालयों व घरों में?

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 ने इस पहलू पर बल दिया था कि विद्यालय बच्चों का स्वागत करें। शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 बच्चों के प्रति भय, चिंता व सदमे से मुक्त कक्षाओं एवं विद्यालयों की हिदायत देता है। बाल अधिकार परिषद् दिल्ली व अन्य राज्यों व केंद्र शासित प्रदेशों में 2007-08 से बच्चों के लिए कार्य कर रही है। इन सब कोशिशों के बावजूद यदि बच्चे कक्षाओं और विद्यालयों में डरते ही रहे तो कैसे पढ़ेंगे और क्या सीखेंगे? क्या कारण है कि बच्चों के प्रति यह अत्याचार होता ही रहता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि बच्चों के माता-पिता इसे आसानी से बर्दाश्त कर लेते हैं। शायद इसलिए कि सब माता-पिता चाहते हैं कि किसी भी कीमत पर उनके बच्चे पढ़ने में सबसे अच्छे हों और हर समय तमीज़ और तहज़ीब के दायरे में रहें। उन्हें या अध्यापकों को बिलकुल भी चिंता नहीं है कि इन बच्चों को खेलने, हँसने और जो उन्हें पसंद है करने के लिए भी समय देना ज़रूरी है। शिक्षक की एक शिकायत पहुँचते ही माता-पिता तैयार रहते हैं घर में बच्चे को सज़ा देने के लिए। यदि माता-पिता बच्चों की पढ़ाई की ज़रूरत से ज़्यादा चिंता करते हैं तो शिक्षक को अनेक मौके मिलते हैं बच्चों के साथ दुर्व्यवहार करने के लिए जैसे-बेइज़्ज़ती करना, खिल्ली उड़ाना, मारना व पीटना। माता-पिता व शिक्षक अच्छी तरह जानते हैं कि दोनों कुछ भी करें, कहीं से कोई शिकायत नहीं आएगी। दोनों एक-दूसरे का साथ देंगे बच्चों के भविष्य को सुधारने के लिए। मानसिक या शारीरिक तौर पर बच्चे कितने भी परेशान हों, उनका ख्याल, उनकी चिंता तभी कोई करेगा जब वे पढ़ाई में बेहद

अच्छे और तहज़ीब में भी सबसे अच्छे होंगे। बच्चे बेबस हों, घबराहट में हो, दहशत में जी रहे हों, किसी के पास उनके लिए समय और इच्छा दोनों ही नहीं है। घुट-घुट कर जीते हुए बच्चे आत्महत्या के बारे में सोचते हैं या सच में कर लेते हैं, घर से भाग जाते हैं, बदला लेने की भावना के साथ जीते हैं या फिर शिक्षक द्वारा की गई पिटाई के दौरान लगी गहरी चोट के ठीक होने का इंतजार करते हैं, बहरे होकर, हाथ, पैर या गर्दन की हड्डियाँ टूट जाने के साथ अपाहिज होकर जीते हैं। कई बच्चे तो गहरी चोटों और सदमे से बाहर आए बिना ही संघर्ष करते हुए जीवन गँवा बैठे।

आवश्यकता है बच्चों को समझने की। उनके साथ मिलकर उनकी कठिनाईयों को कम करने की। उनके दोस्त बन कर उनकी परेशानियों को दूर करने की। बच्चों पर अपने सपने मत थोपिए बल्कि उनके सपनों को साकार करने में उनकी मदद करें। माता-पिता व शिक्षकों का यह सोचना बहुत ज़रूरी है कि यह कैसे संभव हो सकता है कि हर बच्चा हर समय चुप और तमीज़ के दायरे में रहे? कैसे जिए वह बचपन के दिनों को? जब वह हँसना चाहे तो बिना किसी डर के हँसे, उसे मारा-पीटा न जाए, उसे बेइज़्ज़त न किया जाए, उसे गैर ज़िम्मेदार न माना जाए। जब वह खेलना चाहे खेले, उसे पूरी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। बच्चों को बड़ा बनाने के प्रयास में उसका बचपन न छिन जाए इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए। कक्षा में बात करना, देर आना, घर का काम न कर पाना इतना बड़ा गुनाह नहीं है कि उसके लिए उसकी पिटाई की जाए। आवश्यकता इस बात की है कि उसे प्यार से विश्वास में लेकर समझाया जाए। बच्चों में पढ़ाई के प्रति रुचि आते ही बच्चे आपको वह कर दिखाएँगे जो कभी आपने माता-पिता व शिक्षकों के रूप में सोचा नहीं होगा। चौंका देंगे वह आपको अपनी मेहनत व प्रतिभाओं से। देकर तो देखिए आप इन्हें हिम्मत व विश्वास। आपको अच्छा लगेगा और बच्चों को भी। विश्वास और दोस्ती का नया रिश्ता शुरू होगा आपके और बच्चों के बीच। बच्चे ज़िम्मेदार बन कर दिखाएँगे आपको शिक्षा के क्षेत्र में, खेलों में व अन्य प्रतिभाओं में, सक्षम होंगे बढ़ती हुई दक्षता के साथ।

❑❑❑

लेख **2**

बाल साहित्य-उदासीनता की बदलती रंगतें

*शारदा कुमारी**

नन्हे पाठकों को रोचक बालसाहित्य मिलेगा तो वे स्थायी पाठक बनेंगे। बच्चों में पढ़ने के प्रति रुचि जाग्रत करने के लिए आज हर स्तर पर प्रयास हो रहे हैं। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम, विभिन्न परियोजनाओं का क्रियान्वयन तथा रोचक बाल साहित्य उपलब्ध कराने संबंधी कार्यों की शुरूआत की गई है। इसी का सुखद परिणाम है कि आप शिक्षक हो या अभिभावक सभी में इस बात के प्रति जागरूकता उत्पन्न हो गई है कि बच्चों के लिए किस प्रकार का बाल साहित्य चुना जाए। इसी बात को उजागर कर रहा है लेख- ***बाल साहित्य-उदासीनता की बदलती रंगतें।***

प्राथमिक स्तर की शिक्षा में दिलचस्पी रखने वालों और बच्चों से सरोकार रखने वालों के लिए यह बात ज़रूर सुकून देने वाली है कि हमारे देश में बाल साहित्य को लेकर गोष्ठियाँ आयोजित की जा रही हैं, पत्रिकाओं के विशेषांक निकाले जा रहे हैं और अध्यापकों की तैयारी से जुड़े कार्यक्रमों में भी बाल साहित्य पर बातचीत होने लगी है।

हमारे देश के संदर्भ में यह बात इसलिए दीगर है कि बच्चों की ज़रूरतों को कभी 'ज़रूरत' समझा ही नहीं गया, 'अरे! बच्चे ही तो हैं, उनके लिए इतना क्या सोचना' कहकर बच्चों से जुड़ी बड़ी से बड़ी अति संवेदनशील बात को भी बड़े हलके से लिया जाता है। सार्वजनिक परिवहन सुविधा हो या स्वयं का वाहन, बच्ची यदि पूरी सीट पर बैठी है तो उसे बड़े आराम से उठा दिया जाता है, यह कहते हुए कि 'अरे बच्ची तो कहीं भी टिक बैठ जाएगी।' बच्चों के लिए खिलौने आदि लाने की बात हो तो पहले उसके टिकाऊपन पर ध्यान दिया जाएगा और हाँ इस बात पर भी कि अड़ोसी-पड़ोसी सगे संबंधियों को जताया जा सके कि 'देखो हम अपने बच्चे के लिए कितना महँगा खिलौना लाते हैं।' उनके लिए स्कूल चुनना हो तो 'स्कूल का सुविख्यात' होना बहुत मायने रखता है और इन 'सुविख्यात स्कूलों' में जुटाया गया ताम-झाम बच्चों की ज़रूरतों का कितना ध्यान रखता है यह अपने-आप में बहुत

* *वरिष्ठ प्रवक्ता*, मंडलीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, आर.के.पुरम्, नयी दिल्ली

बड़ा सवाल है। ठीक यही सब बातें लागू होती हैं बच्चों के लिए पुस्तकें चुनने के संदर्भ में। बच्चे कैसी पुस्तकें पढ़ना चाहेंगे, यह बात तो सोचने की ज़रूरत ही नहीं समझी जाती। यहाँ पर भी हम बड़ों के 'मानक' आड़े आ जाते हैं।

मिसाल के तौर पर आपको एक वाकया सुनाती हूँ। दिल्ली के अभिजात्य वर्ग को ललचाने की तमाम चीजें जुटाने वाले एक 'सुविख्यात' विद्यालय की पुस्तकालयाध्यक्ष अपनी दो सहयोगियों के साथ मेरे पास आईं। उनका मेरे पास आने का प्रयोजन था कि मैं उन्हें कुछ बालोपयोगी पुस्तकों के नाम सुझा सकूँ। मुझे इस बात की वास्तव में बहुत खुशी हुई और मैंने अपने बाकी सभी काम छोड़कर उन्हें कई पुस्तकों के नाम सुझाए। वे पुस्तकें कहाँ से हासिल हो सकती हैं ये सब पते इत्यादि भी बड़े जतनपूर्वक बता दिए।

एक सप्ताह बाद घोर निराशा के साथ वह टीम लौटी। आते ही उन्होंने उलाहना दिया कि पुस्तकों के नाम सुझाते समय मुझे स्कूल के 'स्तर' और 'नाम' का तो ध्यान रखना चाहिए था। उन्हीं के शब्दों में, "मैडम, ये क्या? आपने तो एकदम लोअर मिडिल क्लास किताबें सुझा दीं।"

सकपकाहट के साथ-साथ मुझे अपनी अज्ञानता पर बड़ी बेबसी-सी महसूस हुई कि बाल साहित्य भी लोअर-मिडिल-अपर क्लासों में बँट चुका है और मुझे पता तक नहीं।

बातचीत की मितव्ययिता के बाँध तोड़ते हुए उनका तुमुल कोलाहल मुझे यह बता पाया कि उनके अभिभावकों को ये सस्ती किताबें लुभा नहीं पाएँगी, ''यू नो अवर पेरेंट्स ... दे बिलांग टू ..... आई थिंक यू कैन अंडरस्टैंड ...। आप हमें कुछ महँगे नामी प्रकाशकों की लुभावनी चिकनी चमकदार किताबों के नाम सुझाएँ। हमारे पेरेंट्स को भी लगे कि हम बच्चों का कितना ख्याल रखते हैं।'' उनकी इस बात पर मुझे पिछले वर्ष की घटना याद हो आई जब मैंने अपने संस्थान की सफाईकर्मी को उसकी छह वर्षीया बेटी के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली द्वारा 'बरखा' शृंखला उपहारस्वरूप दी। बच्ची तो पुस्तकों को पाकर फूली नहीं समा रही थी। बच्ची का अतिरेक उत्साह पुस्तकों के शीर्षक व कथानक जानने को आतुर था जबकि माँ की जिज्ञासा पुस्तकों के दाम जानने भर तक सीमित थी। पूरी पुस्तक उलट-पुलट कर अंतिम पृष्ठ पर पुस्तक के दाम देखकर माँ के चेहरे की कड़वाहट तीक्ष्णता के साथ अभिव्यक्त हुई, "मैडम, मेरी बच्ची के लिए दस रुपल्ली वाली किताब।"

इधर माँ मुझे दाम को लेकर उलाहना दे रही थी तो उधर उसकी बच्ची पुस्तकों की जादुई दुनिया में खो चुकी थी। उन पुस्तकों से वह अपने मन के तारों को झनझनाने वाली ध्वनियाँ सुन रही थी, अपने चारों ओर के संसार की रंगतें देख रही थी। उसकी कौतूहल भरी दृष्टि उसकी बौद्धिक, सक्रियता और स्वत: स्फूर्त खुशी का परिचय दे रही थी। इस तरह की मिसालें मेरे और आप सभी के पास होंगी और मन खिन्नता से भर उठता होगा पर खुशी अब इस बात की है कि बाल साहित्य पर चर्चाएँ चल पड़ी हैं। लोगों में बच्चों के लिए

पुस्तकें खरीदते समय सजगता व चौकन्नापन बढ़ा है जो कई मायनों में पहले से फ़र्क है। जैसे कि एक ज़माने में अभिभावकों की एक आम प्रवृत्ति थी कि बच्चों के लिए पाठ्यपुस्तक से इतर पुस्तकें और पत्रिकाएँ खरीदते समय इस बात का खास ध्यान रखा जाता था कि पुस्तकों में किसी-न-किसी तरह का संदेश हो। पुस्तक नैतिक मूल्यों और उपदेशों से लकदक अटी पड़ी हो। ऐसी पुस्तक अभिभावकों की पहली पसंद होती थीं और अमर चित्र कथाओं ने अभिभावकों की इस पसंद का पूरा-पूरा लाभ उठाया। अभिभावक और अध्यापक उन पुस्तकों से परहेज़ करते थे जिनमें बच्चों की आवारगी, मौज़ूँपन अटपटी अठखेलियों का ज़िक्र हो। संस्कृतनिष्ठ भाषा हिंदी के संदर्भ में उन्हें बहुत सुहाती थी और ऐसी पुस्तक जिसमें शब्दों का ठेठ खौटीपन नज़र आए उन्हें तो वे दूर से ही नमस्कार कर देते थे, ये तो भला हो गुलजार के गीत 'जंगल-जंगल बात चली है पता चला है चढ्ढी पहन के फूल खिला है फूल खिला है' का जिसने चढ्ढी, आवारा, झुमकेदार जैसे शब्दों को एक सामाजिक वर्ग विशेष में स्वीकृत बनाया।

बदलाव की यह बयार बच्चों के लिए बहुत भली है। लोग उस पैमाने की तलाश करने लगे हैं जो उन्हें बता सके कि कौन-सी पुस्तक बच्चों के लिए 'खुल जा सिमसिम' बनकर उन्हें पढ़ने को उकसाएगी और उनकी चेतना में बिंबात्मक, काव्यमय चिंतन का सुदृढ़ आधार बनाएगी।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली के 'रीडिंग सेल' ने बच्चों के लिए पुस्तकों का चयन करने के संदर्भ में एक पैमाना बनाने की कोशिश की है। उस पैमाने के अनुसार पाठकों की उम्रगत रुचियों और विशिष्टताओं का बराबर ध्यान रखते हुए पुस्तक को भाषा, चित्रांकन, विषयवस्तु के प्रवाह, सरलता और रंजकता के आधार पर परखा जाए। ऐसी पुस्तकें ली जाएँ जो बच्चों को उत्साही पाठक बनाएँ, जिनके चित्रों पर संवाद करने की पर्याप्त संभावनाएँ हों। 'संवाद करना' सीखना और सीखे हुए अनुभवों को मजबूत करने का कारगर तरीका है। चित्र संवाद और अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम स्रोत हैं। भाषायी गतिविधि के रूप में भी बच्चे चित्रों के आधार पर अपनी कल्पना से उसमें बहुत कुछ जोड़ते हैं, पूर्व अनुभवों से संबंध स्थापित करते हैं। चित्रों की जब बात चल रही है तो लगे हाथ शब्द रहित या कम शब्दों वाली चित्रात्मक पुस्तकों पर भी बात कर लेनी ज़रूरी है। खुशनुमा रंगों के साथ एक ही चित्र में बहुत-सी घटनाओं व अवधारणाओं का दिखना कभी 'समृद्ध चित्र' की श्रेणी में आता था पर अनुभव बताते हैं कि एक ही चित्र में कई पात्रों/चरित्रों घटनाओं का होना बच्चों में खिन्नता का भाव पैदा करता है, कई बार उन्हें पशोपेश में भी डाल देता है। अच्छा तो यह है कि चित्रों में पुनरावृत्ति हो और कुछ इस तरह की गुँजाइश हो कि बच्चे अनुमान लगाने का आनंद उठा सकें। कथानकों के संदर्भ में जानी-पहचानी घटनाओं के साथ-साथ ऐसी छवियाँ हों जो बच्चों को

विस्मित कर सकें। पूर्व घटनाओं की पुनरावृत्ति और अनुमान लगाने की गुँजाइश बच्चों की पुस्तक पढ़ने के प्रति ललक बनाए रखती है।

कुछ अध्यापक लोक कथाओं को यह कहकर तिरस्कृत कर देते हैं कि इन कथाओं को पढ़कर बच्चे वैज्ञानिक चिंतन से कोसों दूर भागेंगे पर उन्हें समझना होगा कि यह उनका भ्रम है।

तिलिस्मी दुनिया उन्हें मज़े के साथ खोज-बीन के अवसर देगी और जिज्ञासु प्रवृत्ति को भी संबल प्रदान करेगी। मुझे याद आती है अपने बचपन में पढ़ी वह पुस्तक जिसके मुख्य पात्र द्वारा छोड़े गए तीर से जमीन के भीतर अचानक चाँदी की एक पगडंडी बन जाती है और वह पगडंडी कई तरह के घुमाव लेती हुई एक सुनहरे बाग में जा पहुँचती है। याद आता है कि बचपन में कितने सवालों को जन्म दिया था इस पुस्तक ने।

लोक कथाओं के संदर्भ में अभिभावक और अध्यापकों का एक और भ्रम है कि लोककथाएँ बहुत से पुरातनपंथी संकीर्ण विचारों व छवियों को पुख्ता करती हैं। इसमें कोई दो राय नहीं है कि लोक कथाओं में कुछ रूढ़िबद्ध चरित्र चत्रिण होंगे, हो सकता है कि कुछ ऐसे शब्द भी हों जो आज के समय में संवैधानिक तौर पर तो अमान्य हैं और इंसानियत के नाते भी जिन्हें अमान्य माना जाना ठीक होगा। लेकिन, यह भी जान लेना ज़रूरी है कि बच्चे इस तरह के चित्रण पर सवाल उठाते हैं और हमें भी मौका देते हैं कि हम उनके साथ कुछ सवाल-जवाब करें। पंचतंत्र व गिजुभाई बधेका की एक से एक खूबसूरत कहानी में कुछ इस तरह के शब्द मिल जाते हैं पर इस आधार पर उन पुस्तकों को छोड़ा नहीं जा सकता। इन पुस्तकों को पढ़ते हुए बच्चों के मन में जो प्रश्न उठते हैं, वे उस ज्ञान शिखर की ओर विचारों की तेज उड़ान की शुरूआत हैं, जहाँ से कुछ बरस बाद बच्चे जीवन के रहस्यों की जटिलता देख पाएँगे।

बाल साहित्य विधाओं की दृष्टि से भी भरा-पूरा हो। जानकारीपरक पुस्तकें, गतिविधि आधारित पुस्तकें, कविता, पहेलियाँ, पत्र डायरियाँ सभी कुछ हो सकता है, बशर्ते ज्ञान देने व उपदेश देने की नीयत न हो।

कथ्य, भाषा, उम्रगत विशेषताओं के अनुरूप हो। हालाँकि यदि इन मानदंडों को ध्यान में रखें तो निराशा ही हाथ लगेगी क्योंकि बाल साहित्य को लेकर बड़े गमगीन हालात हैं। बच्चों के लिए लिखा गया साहित्य ऐसे-ऐसे चरित्र चित्रणों से अटा पड़ा है जिनके जीवन मूल्य अपनाने की कल्पना बुजुर्गों तक ने न की हो। अपने दफ्तर की मेज़ पर धूल की किरच देखकर भड़कने वाले व्यक्ति अपने बच्चों के लिए काम-क्रोध आदि से बचने का संदेश देने वाली कहानियों की पुस्तकें खरीदते हैं। अपने बुजुर्ग माता-पिता को वृद्धाश्रम की राह दिखाने वाले दंपत्ति अपने बच्चों को श्रवण कुमार की जीवनी भेंट करते हैं। श्रमजीवियों को तिरस्कृत दृष्टि से देखने वाले रचनाकार बच्चों के लिए कविता/कहानी लिखते समय पूरी रचना के ताने-बाने को श्रम के महत्त्व से जुड़े संदेशों में उलझा डालेंगे। अपने चारों ओर की

सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक उथल-पुथल से बेखबर दुनिया बच्चों को 'जागरूक प्राणी' बनने की ओर प्रेरित करेगी तमाम तरह की पुस्तकों से। कहने का मतलब यह है कि बच्चों को अगर पढ़ने के लिए कुछ भी देना है तो यह नीतिपरक उपदेशों व संदेशों से लकदक होना चाहिए। बाल साहित्य के प्रति इस तरह की धारणा रखने वाले समाज की समझ में बदलाव की हवा बहने लगी है जिसकी ताजा मिसाल है नयी दिल्ली के तुगलक क्रिसेंट के विद्यालय में शिशु गीतों पर आयोजित हुई एक बैठक। इस बैठक में प्राथमिक एवं पूर्व प्राथमिक विद्यालयी स्तर पर कार्यरत अध्यापिकाएँ शिशु गीतों व कहानियों के स्वरूप, उद्देश्य आदि पर विचार कर रही थीं। 76 प्रतिशत प्रतिभागियों का मत था कि शिशु गीत व कहानियाँ ऐसी हों जो कि बालकों को 'मज़ा' दें जबकि दो वर्ष पहले इसी विद्यालय में सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया था कि बच्चों को ऐसे गीत, कविता, कहानी आदि सुनाए व पढ़ाए जाएँ जो किसी-न-किसी प्रकार का मूल्यपरक संदेश दें। मुझे याद आती है कुछ कविताओं के प्रति उन अध्यापिकाओं की प्रतिक्रिया जो यहाँ साझा करना चाहूँगी। अधिक तो नहीं दो एक कविताएँ आपके सामने रखती हूँ-

"टाई पहनी है चूहे ने
पहनी है पतलून
चुहिया दादी को करता है
बैठा टेलीफून
एक हाथ से चुहिया दादी
मटर रहीं थी भून
और फोन पर बोल रही थी
हैलो अफलातून"

दूसरी कविता कुछ इस तरह से थी -

"तितली को अपने पँखों पर
रहता है अभिमान
मधु पराग से मिल सकता है
उसे नहीं यह ज्ञान
जब तक वह पंखों पर भूली
उड़ती चारों ओर
मधुमक्खी फूलों पर आकर
लेटी शहद बटोर।"

तीसरी कविता पर भी नज़र डालें -

"एक शहर है टिम्बकटू
लोग वहाँ के हैं बुद्धू
बिना बात के ही ही ही
बिना बात के हू हू हू"

संजीदगी के साथ बयाँ करूँगी कि इन तीनों कविताओं में से 'तितली को अपने' वाली कविता को बहुत सराहा गया व बाकी दो कविताओं को यह कहकर कि 'उनमें है क्या' तिरस्कृत किया गया। एकदम ऊलजलूल सी कविताएँ हैं न कोई अर्थ न कोई 'मॉरल वैल्यू' पर इस वर्ष तो विचारों में आए बदलाव की बात देखते ही बनती थी। एकबारगी तो लगा कि यह बदलाव कहीं छलावा या दिखावा मात्र तो नहीं, पर उस कक्षा में आनंद आया जहाँ बच्चे मज़ा ले लेकर गा रहे थे -

"चना बनावे घासी राम
जिनकी झोली में दूकान
चना खावे घसीरन मुन्ना

बोले और नहीं कुछ सुनना।"

उस कक्षा के पिछले दरवाजे की आड़ में एक चार्ट पेपर पर लिखी कविता मुँह बिसूर रही थी।

"तीन चार तीन चार
सदा जीत का करो विचार
पाँच छह पाँच छह
हम वीर सिपाही हैं।
सात आठ सात आठ
बहादुरी का पढ़ लो पाठ।"

कहने का मतलब यही है कि बाल साहित्य में पसरी उदास रौनकों में खुशनुमा रंगतें अँगड़ाइयाँ ले रही हैं।

❑❑❑

3

बच्चों के लिए कैसे चुनें किताब?

अक्षय कुमार दीक्षित*

बच्चों के साहित्य में भी उन सभी विशेषताओं का होना बहुत ज़रूरी है जिनकी किसी प्रकार के साहित्य में अपेक्षा रखी जाती है। अच्छे साहित्य में अनेक परतें और गहराई होती है। जितनी बार पढ़ो, एक नयापन नज़र आता है। बाल-साहित्य का मतलब बचकाना साहित्य नहीं है। बहुत छोटे बच्चों की पुस्तक में भी एक रोचक कथानक और "मूड" होना चाहिए। फूहड़ता या बे-सिर-पैर की बातें नहीं होनी चाहिए। बच्चों के लिए किताबें चुनने का आधार बच्चा हो? किताबें चुनते समय किन-किन बातों को दृष्टिगत रखा जाए, इन्हीं सब बिंदुओं पर आधारित है यह लेख- ***बच्चों के लिए कैसे चुनें किताब।***

कामना जी दो बच्चों की माँ हैं, साथ ही वे एक प्राइमरी स्कूल में पढ़ाती भी हैं। उनका मानना है कि बच्चों को भाषा और दुनिया की बेहतर समझ के लिए बहुत-सी अच्छी किताबें पढ़ने के लिए देनी चाहिए। जब भी पुस्तक मेला लगता है या किसी दुकान में कोई अच्छी किताब नज़र आती है, वे उसे खरीदकर घर और स्कूल में बच्चों को दे देती हैं, पर उन्हें यह देखकर बहुत निराशा होती है कि बच्चे उन किताबों को हाथ तक नहीं लगाते। आपके विचार से इस बात के क्या कारण हो सकते हैं?

शायद कामना जी वही गलती कर रहीं थीं जो हममें से ज़्यादातर ''बड़े'' कर बैठते हैं। वे बच्चों की पसंद की नहीं, बल्कि अपनी पसंद की किताबें चुन रही थीं। देखा जाए तो बच्चों को अपनी पसंद और ज़रूरत की किताबें कभी-कभार ही मिल पाती हैं। इसका कारण यह है कि उनके लिए किताबें लिखने और चुनने का काम आमतौर पर "बड़े" ही करते हैं, जिन्हें मालूम ही नहीं होता कि उनकी पसंद क्या है या बच्चों के लिए किताबें लिखते या चुनते समय किन बातों का ख्याल रखना चाहिए। किसी भी पुस्तकालय या पुस्तक मेले में चले जाइए, आप पाएँगे कि हजारों पुस्तकें उपलब्ध हैं जो दावा करती हैं कि वे बच्चों के लिए लिखी गई हैं। उनमें कुछ अच्छी होंगी पर ज़्यादातर बचकानी और बेकार ही होंगी। सच्चाई यह है कि बच्चों के

* *शिक्षा सलाहकार*, सी-633, जे.बी.टी.एस.गार्डन, छत्तरपुर एक्स, नयी दिल्ली-110074

लिए अच्छी किताबें चुनना कोई "बच्चों" का खेल नहीं है।

बच्चों के लिए कौन-सी पुस्तक "अच्छी" कही जा सकती है? इस प्रश्न का उत्तर बहुत ही सरल है-वह पुस्तक जिसे बच्चे पढ़ना चाहते हैं, लेकिन कई बार हम बच्चों को ज़बरदस्ती कोई पुस्तक पढ़ने पर मज़बूर करने लगते हैं, भले ही वह बच्चों को बिल्कुल नापसंद हो, क्योंकि हमें लगता है कि इससे उनकी ''जानकारी'' बढ़ेगी या उनमें ''अच्छी आदतों'' का विकास होगा। इस तरह की विचारधारा का बहुत विध्वंसात्मक असर होता है। सबसे पहले तो इससे बच्चों की पढ़ने की इच्छा समाप्त हो जाती है। दूसरे, पुस्तकों के प्रति उनमें अरुचि का भाव पैदा हो जाता है। तीसरे, हम उस अनुभव का आनंद लेने से वंचित हो जाते हैं जो साथ-साथ बैठ कर पुस्तक में से कहानी सुनने-सुनाने से मिलता है। क्या इसका मतलब यह है कि हम बच्चों को हर वह पुस्तक पढ़ने को दें जो वे पढ़ना चाहते हैं?

नहीं! जिस तरह हम बच्चों के भोजन को लेकर सतर्क रहते हैं, उसी तरह उनके मानसिक भोजन के प्रति भी जागरूकता ज़रूरी है, अन्यथा वे ऐसी पुस्तकें भी चुन सकते हैं जो उनके तो क्या, किसी के लिए अच्छी नहीं हैं। इसलिए बच्चों के लिए पुस्तकें चुनते समय हमें कुछ बातों को ध्यान में रखना होगा। आइए, देखते हैं कि बच्चों के लिए पुस्तकें चुनते समय किन बातों का विशेष ध्यान रखा जाए।

किताब की विषयवस्तु

मोटे तौर पर विषयवस्तु का अर्थ है कि वह पुस्तक किस बारे में हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई पुस्तक राजस्थान की लोक कथाओं के बारे में है तो उसकी विषयवस्तु ''राजस्थान की लोकथाएँ'' या सिर्फ ''लोककथाएँ'' मानी जा सकती हैं। किसी-किसी पुस्तक की विषयवस्तु दोस्ती, साहस, न्याय या समानता भी हो सकती है, जो उसमें दी गई कहानियों पर निर्भर करता है। ऐसी विषयवस्तु की पुस्तकें चुनें जो सीधे -सीधे बच्चों के अनुभवों से संबंधित हों, कई अनुभव ऐसे होते हैं, जिन्हें दुनिया का हर बच्चा उम्र के अलग-अलग मुकाम पर ज़रूर हासिल कर लेता है। उदाहरण के लिए, जन्म से 2 वर्ष की आयु में प्रत्येक बच्चा बुनियादी गतिविधियाँ करने लगता है और अवधारणाएँ प्राप्त करने के साथ-साथ बुनियादी गतिविधियाँ करने लगता है और अपने आसपास की चीज़ों को पहचानने लगता है। इसलिए बच्चों की वे पुस्तकें जो सीधे-सीधे इन अनुभवों से संबंधित हैं, उन्हें इस आयुवर्ग के लिए उचित माना जा सकता है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि इस आयुवर्ग के लिए रंग, आकार, गिनती, अक्षर, आवाज़ें, आस-पास के पशु-पक्षी,घर के सदस्य, ताल, शोर, उछल-कूद आदि उपयुक्त विषय रहेंगे।

3 से 5 वर्ष के बच्चे अपने लिए ज्यादा कामकाज करने लगते हैं, आस-पास की दुनिया के काम करने के तरीकों को समझने लगते हैं, बुनियादी मूल्यों का निर्माण करने लगते हैं, अपनी संवदेनाओं पर नियंत्रण करना सीखने लगते हैं और अपने माता-पिता, भाई-बहनों और दोस्तों के साथ संबंधों को रूप देने लगते हैं इसलिए इस आयुवर्ग के लिए दोस्ती, रूठना-मनाना, नाराज़ होना, किसी

स्थान की यात्रा, घूमना-फिरना, खेल-खिलौने, बाग-पेड़-पौधे आदि उपयुक्त विषय कहे जा सकते हैं। 6 से 8 साल के बच्चों के लिए स्कूल, पालतू पशु-पक्षी, दोस्त, संबंधी, खेल, रोज़मर्रा का जीवन आदि उचित विषय रहेंगे। 8 वर्ष से ऊपर के लिए यही विषय थोड़ी जटिल परिस्थितियों में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। साथ ही सही-गलत का चुनाव, विशाल दुनिया में खुद के स्थान को पहचानना और किसी समस्या का उचित तरीके से समाधान जैसे विषय भी बच्चे अब सराह सकेंगे।

बच्चों के साहित्य में भी उन सभी विशेषताओं का होना बहुत ज़रूरी है जिनकी किसी प्रकार के साहित्य में अपेक्षा रखी जाती है। अच्छे साहित्य में अनेक परतें और गहराई होती है। जितनी बार पढ़ो, एक नयापन नज़र आता है। कुछ लोग मानते हैं कि यदि कहानी में मुख्य पात्र जानवर या बच्चे हैं और उनके नाम शेरसिंह, बिल्लू, छोटू, परी आदि हैं तो वह "बाल-साहित्य " है।

बाल-साहित्य का मतलब बचकाना साहित्य नहीं है। बहुत छोटे बच्चों की पुस्तक में भी एक रोचक कथानक और "मूड" होना चाहिए। फूहड़ता या बे-सिर-पैर की बातें नहीं होनी चाहिए।

जहाँ आयु के अनुसार चुने गए विषय उस आयु के हर बच्चे के लिए उपयुक्त हैं, वहीं कुछ विषय ऐसे भी हैं जो किसी खास बच्चे के लिए इसलिए उपयुक्त कहे जा सकते हैं, क्योंकि वे उसकी रुचि के विषय हैं। उदाहरण के लिए कोमल 7 वर्ष की बच्ची है, लेकिन उसे सौरमंडल, अंतरिक्ष और तारों के बारे में बहुत जिज्ञासा है। इस बारे में कोई भी पुस्तक उसे मिलती है तो जब तक वह उसे पूरा पढ़ नहीं लेती, चैन से नहीं बैठती। इस आयु के ज़्यादातर बच्चे उस तरह की पुस्तकों में रुचि नहीं दिखाते। इसलिए उनके लिए अंतरिक्ष विषय उपयुक्त नहीं कहा जा सकता, लेकिन कोमल के लिए यह बिल्कुल उपयुक्त है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि बच्चों के लिए पुस्तक चुनते समय हमें बच्चे की उम्र और उसकी विशेष रुचि को ध्यान में रखते हुए देखना चाहिए कि उसकी विषयवस्तु बच्चे के जीवन के अनुभवों से संबंधित है या नहीं। इस तरह की विषयवस्तु बच्चे को पुस्तक के प्रति आकर्षित करने में मदद करेगी, बल्कि कई बार तो केवल बच्चे को पुस्तक से जोड़ने में विषयवस्तु ही पर्याप्त होती है।

चित्र

संदीप जी के घर में अखबार के साथ-साथ सामयिक साप्ताहिक पत्रिका भी आती है। जानते हैं, घर में सबसे पहले वह पत्रिका कौन लेकर बैठता है? उनका 5 साल का बेटा अरुण! वह तो अभी स्कूल भी नहीं जाता, लेकिन कई बार वह पत्रिका में देखकर अपने पिताजी को बताता है कि उसमें क्या कुछ छपा है। वह कहता है, "पिताजी, एक बस और ट्रेन की टक्कर हो गयी।" या "इस बार हम भी पहाड़ों में घूमने जाएँगे।"

आपके विचार से वह यह सब कैसे बता पाता है? ऐसी कौन-सी चीज़ है जो उसे एक पत्रिका तक खींच लाती है? आपने सही पहचाना, वह हैं उसके चित्र।

प्रत्येक बच्चे को चित्र अच्छे लगते हैं। चित्र ही वह तत्व है जो बच्चों की पुस्तकों को जादुई प्रभाव देता है और बच्चों के लिए पुस्तकों को आकर्षक बनाता है, विशेष रूप में छोटे बच्चों को। इसलिए बच्चों के लिए पुस्तकें चुनते समय उन पुस्तकों के चित्रों पर भी ध्यान देना ज़रूरी है।

देखा जाए तो इस बारे में कोई आम राय नहीं बनायी जा सकती कि बच्चे को कैसे चित्र पसंद आएँगे और कैसे नहीं? उदाहरण के लिए कुछ लोग कहते हैं कि बच्चों को लोक शैली के चित्र पसंद आते हैं, जबकि कुछ लोग मानते हैं कि लोक शैली के चित्र अमूर्त और बच्चों की रुचि से परे की चीज़ हैं। एक आम व्यक्ति के नज़रिए से देखें तो यह जानना बड़ा सरल है कि पुस्तक में दिए गए चित्र अच्छे हैं या नहीं। अगर पुस्तक के चित्र आपको अच्छे लग रहे हैं तो सामान्यत: बच्चों को भी अच्छे लगेंगे, लेकिन हमेशा ऐसा होना ज़रूरी नहीं है। उदाहरण के लिए, ज़्यादातर बच्चे अँधेरी, डरावनी और अमूर्त चित्रकारी पसंद नहीं करेंगे। भले ही आपको वे कितने ही अच्छे लग रहे हों। विषयवस्तु की ही तरह, चित्र भी यदि बच्चे के अनुभवों और रुचि के विषयों से जुड़े हैं तो वे बच्चों को आकर्षित ज़रूर करेंगे।

बच्चों की ज़्यादातर पुस्तकों में केवल कामचलाऊ चित्र दे दिए जाते हैं, यह सोचकर कि बच्चों को क्या पता चलेगा अच्छे और बुरे चित्र का या क्या फर्क पड़ता है चित्र से, कहानी तो अच्छी है, लेकिन जो बाल साहित्य के प्रति गंभीर प्रकाशक हैं, वे चित्रों की ओर भी उतना ही ध्यान देते हैं, जितना वे पुस्तक की विषयवस्तु पर देते हैं। इसलिए अगर आपने बच्चों के लिए उपयुक्त विषयवस्तु वाली पुस्तक खोज ली है तो सामान्यत: उसमें उपयुक्त चित्र भी मिल ही जाएँगे।

छोटे बच्चों की पुस्तकों में बहुत सारे चित्र होने चाहिए, जबकि बड़ों की पुस्तकों में थोड़े बहुत चित्रों से भी काम चलाया जा सकता है। छोटे बच्चों की पुस्तकों में ज़रूरी नहीं कि बहुत विस्तृत चित्र हों। चार साल से छोटे बच्चों की पुस्तकों में सरल रेखाचित्र भी उन्हें मज़ेदार लगते हैं। चटख रंग और मूर्त आकृतियाँ उन्हें आकर्षित करती हैं। ज़्यादा जटिल चित्र उनके मन में पुस्तक के प्रति अरुचि उत्पन्न कर देंगे। हाँ, चार साल से बड़ी उम्र के बच्चों को अधिक बारीक विवरण दर्शाने वाले चित्र लुभाते हैं। जिन चित्रों में बारीक विवरण होते हैं, उनमें हर बार नयी-नयी चीज़ें और क्रियाकलाप खोजना इस आयु के बच्चों को बहुत अच्छा लगता है। ऐसे चित्रों वाली पुस्तक कभी पुरानी नहीं होती।

हालाँकि नौ साल से ऊपर की उम्र के बच्चों की पुस्तकों में चित्र शब्दों से कम महत्वपूर्ण हो जाते हैं, लेकिन अभी भी उनका महत्त्व बरकरार रहता है। इस आयु में सरल और कार्टून शैली के चित्र पुस्तक के प्रति उन्हें आकर्षित करते हैं और पुस्तक देखते ही उसके प्रति अपना दृष्टिकोण बनाने में मदद करते हैं।

पुस्तक में किसी किस्म के जातीय, भाषाई, उम्र या रूप-रंग संबंधी, धार्मिक सांस्कृतिक,

सामाजिक या लैंगिक पूर्वाग्रह नहीं होने चाहिए। पात्र आत्मविश्वासी और सफल हों, लेकिन सफलता के केवल परंपरागत पैमानों जैसे "राजकुमारी से शादी" या "अमीर बन जाना" का ही प्रदर्शन न करते हों। यदि कोई पात्र परंपरागत विश्वास या नियम को तोड़ता हुआ नज़र आता है तो कहानी में उसे उपहास का पात्र नहीं बनाना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि किसी कहानी में कोई लड़का घर में खाना बनाता है और उसके दोस्त उसका मज़ाक उड़ाते हैं, तो ऐसी कहानी छोड़ देना ही उचित है।

आपने जो पुस्तक चुनी है, यदि उसमें चित्र दिए गए हैं तो उनकी उपयुक्तता पर भी नज़र डालें। केवल पुस्तक में सुंदर-सुंदर चित्र ही पर्याप्त नहीं हैं। चित्र और शब्द एक-दूसरे के पूरक होने चाहिए। चित्र कथानक और पुस्तक की भावना से संगत हों और उसमें कुछ नयी बात जोड़ते हों, न कि उससे ध्यान भटकाते हों। उनमें अपनी एक कलात्मक छाप हो और वे बच्चों की कल्पना को पोषित करें। चित्रों में किसी किस्म के पूर्वाग्रह नज़र नहीं आने चाहिए।

कहानी या कथावस्तु

रेनू जी एक प्राथमिक स्कूल में पढ़ाती हैं। एक बात उन्हें बाकी शिक्षकों से कुछ अलग करती है। वे अपनी कक्षा में हर रोज़ एक कहानी ज़रूर सुनाती हैं। उनका कहना है, ''जिस समय मैं बच्चों को कहानी सुना रही होती हूँ, वह समय मेरे और मेरे बच्चों के लिए दिन का सबसे दिलचस्प समय होता है। मुझे यह देखकर बड़ा अच्छा लगता है कि बच्चे कहानी में इतना खो गए हैं कि कुछ तो मुँह बंद करना भी भूल जाते हैं। अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए वे कहती हैं, ''अच्छी कहानी बच्चों की भावनाओं को सही तरीकों से बाँध लेती है। बच्चे कहानी के पात्रों को पसंद करते हैं और उनमें अपनी झलक देखते हैं। वे कहानी में बतायी गई समस्या से तनाव महसूस करते हैं मानो वे स्वयं कहानी का हिस्सा हों। इसी प्रकार, जब समस्या को सुलझा लिया जाता है, वे भी राहत और संतुष्टि महसूस करते है। कहानी में यह सक्रिय भागीदारी ही बच्चे को कहानी की ओर खींचती है। जब आप अपनी कोई मनपसंद फिल्म देख रहे होते हैं, क्या आप भी ऐसा ही महसूस नहीं करते? जब हमारी भावनाएँ किसी कार्य या चीज़ से जुड़ जाएँ तो हम कभी नहीं ऊब सकते। याद रखें, अच्छी कहानी कभी उबाऊ नहीं हो सकती। इसका मतलब यदि कहानी उबाऊ है तो वह बच्चों के लिए अच्छी नहीं कही जा सकती।''

अब हम बात करते हैं पुस्तकों में कहानी की। हालाँकि सभी पुस्तकों में कहानी नहीं होती (जैसे कि गिनती या अक्षर सिखाने वाली सामान्य पुस्तकें) लेकिन बच्चों को पुस्तकों से स्थायी रूप से जोड़ने का काम कहानी की पुस्तकें ही करती हैं। इसलिए आप जो पुस्तक बच्चों के लिए चुन रहे हैं, उसमें अच्छी कहानी ज़रूर होनी चाहिए। यदि चित्र-पुस्तक, कविता-पुस्तक या कथेतर साहित्य (नॉन फिक्शन) में भी अच्छी कहानी के तत्व शामिल होते हैं तो बच्चे उस पुस्तक को भी कहानी

जितनी रुचि से ही पढ़ते हैं। तो अब सवाल ये उठता है कि अच्छी कहानी में कौन-कौन से तत्व होते हैं? एक अच्छी कहानी में उचित प्रारंभ, मध्य भाग और अंत होता है। प्रारंभिक भाग में कहानी के पात्रों का परिचय और उनका विकास किया जाता है। मध्य भाग में किसी तरह की समस्या प्रस्तुत की जाती है और अंतिम भाग में उसका समाधान प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रारूप में थोड़ा बहुत अंतर हो सकता है, विशेष रूप से बहुत छोटे बच्चों की पुस्तकों में, लेकिन ज़्यादातर कहानियों का ढाँचा ऐसा ही होता है। इसलिए बच्चों के लिए पुस्तक चुनते समय उसकी कहानी पढ़कर देखें, भले ही पूरा ना पढ़ सकें। ध्यान दें, क्या उसमें किसी तरह की कोई समस्या है, जिसका समाधान खोजा गया है? क्या उसे पढ़ने में रस आ रहा है? क्या उसकी कथावस्तु भली प्रकार से बुनी गई है?

साथ ही इस बात पर भी ध्यान दें कि किताब का विषय और सामग्री उस आयु वर्ग के हिसाब से हो जिसके लिए आप पुस्तक चुन रहे हैं। छोटे बच्चों के लिए रोज़मर्रा की समस्याएँ और घटनाएँ पुस्तक का विषय हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, स्कूल से घर लौटते समय रास्ते में मिलने वाले कुत्ते से डर लगना। इस वर्ग के बच्चों की कहानियों की एक विशेषता होती है-शब्दों, वाक्यों और घटनाओं की पुनरावृत्ति। बच्चों को मज़ेदार शब्द और वाक्य दोहराना अच्छा लगता है। आप किसी बच्चे को खेलते देखिए, आपको इस बात का सबूत मिल जाएगा। इसके अतिरिक्त पुनरावृत्ति से उन बच्चों को पढ़ने में प्रवीणता हासिल करने में मदद मिलती है जो अभी सीखने की प्रक्रिया में हैं।

इस स्तर की कहानियाँ बहुत अधिक लंबी या जटिल नहीं होनी चाहिए। उनमें बहुत ज़्यादा घटनाएँ या पात्र नहीं हों तो बेहतर है। इस स्तर की पुस्तकों में कहानी के प्रथम तत्व यानि ''प्रारंभ'' में जल्दी से पात्रों का परिचय देकर कहानी के अगले तत्व यानि ''समस्या'' पर ध्यान केंद्रित कर लिया जाता है। उदाहरण के लिए 'लेखक' की पुस्तक ''जिल्द'' को देखा जा सकता है। इस कहानी में एक बच्चा अपनी पुस्तक पर जिल्द चढ़ाने की कोशिश कर रहा है। वह अलग-अलग तरह के कागज़ों से कोशिश करता है और अंत में सफल हो जाता है।

पूरी प्रक्रिया में उसकी माँ पास बैठी-बैठी उसे मूक प्रोत्साहन देती रहती है। यहाँ बतायी गई अच्छी कहानी की सभी विशेषताएँ इस पुस्तक में देखी जा सकती हैं।

बड़े बच्चे अधिक जटिल और बड़े कथानक पढ़ना चाहेंगे। इस वर्ग के लिए कहानी के प्रारंभ में पात्रों का विस्तृत रूप से वर्णन किया जाता है। मध्य भाग में दी गई समस्या भी अधिक जटिल होती है और इसी प्रकार कहानी के अंत में समाधान भी अधिक गूढ़ होता है। इस वर्ग की पुस्तकों में ऐसे मज़बूत किरदार होने चाहिए जिनसे बच्चे जुड़ सकें, जिनमें अपनी और अपनों की जिंदगी की झलक पा सकें और जिनके प्रति संवेदना रख सकें। "संवेदना" ही वह तत्व है जो प्रत्येक स्तर की पुस्तकों में अवश्य होनी चाहिए।

अधिकतर प्रकाशक पुस्तक में यह नहीं बताते कि वह किस आयु वर्ग के लिए है। यह ज़रूरी भी नहीं है क्योंकि कोई भी पुस्तक किसी भी आयु वर्ग के पाठक को भा सकती है, लेकिन एक प्रारंभिक पाठक और ग्राहक को एक मापदंड की ज़रूरत होती ही है। ऐसे व्यक्तियों की सहायता कर सकती है नेशनल बुक ट्रस्ट की पुस्तकें जिन्हें आयु वर्गों के अनुसार विभाजित किया गया है।

भाषा

मनोज जी अपने 4 साल के बेटे को रोज़ रात को एक कहानी पढ़कर सुनाते हैं। उस समय उनका बेटा बड़े ध्यान से पुस्तक की ओर देख रहा होता है। मनोज जी एक बात से थोड़े परेशान से हैं। कई बार ना चाहते हुए भी उन्हें पुस्तक में छपी कहानी को पढ़ते-पढ़ते उसे अपने शब्दों में बदल कर सुनानी पड़ती है। इसका कारण यह है कि पुस्तक में छपी भाषा इतनी अजीब या मुश्किल होती है कि यदि उन्होंने उसे वैसे का वैसा पढ़कर सुना दिया तो बच्चे को कहानी समझ ही नहीं आएगी।

पुस्तक की भाषा उसके सबसे महत्वपूर्ण तत्वों में से एक है। पुस्तक की भाषा समृद्ध और स्तर के अनुरूप होनी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि यदि पुस्तक में ऐसे शब्द हैं जो बच्चे के लिए नए हैं, तो उनसे घबरा कर पुस्तक को छोड़ देना उचित नहीं है। बच्चे संदर्भ के अनुसार ऐसे शब्दों के मतलब स्वयं समझ लेंगे, लेकिन यदि पुस्तक में वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ हैं, अटपटे अनुवाद हैं और पूरी पुस्तक बच्चों के मानसिक स्तर के ऊपर के भारी-भरकम शब्दों से भरी पड़ी है, तो ऐसी पुस्तक को किसी विद्वान के शोध के लिए छोड़ देना ही उचित है।

अटपटे शब्दों की ध्वनि बच्चों को आकर्षित करती है। वे ऐसी कहानियाँ सुनना सुनाना पसंद करते हैं जिनके शब्दों को बोलने में मज़ा आए। इसलिए पुस्तक में यदि ''अगड़म-बगड़म'' जैसे निरर्थक, लेकिन ध्वन्यात्मक शब्द हैं तो चिंतित ना हों, वे कहानी के आनंद में वृद्धि ही करेंगे।

लेखक कई बार कहानी में दर्शाई गई संस्कृति और स्थान को वास्तविकता से चित्रित करने के लिए किसी खास स्थान या बोली का इस्तेमाल करते हैं। ऐसे आँचलिक शब्द और वाक्य कहानी की खूबसूरती में इज़ाफा करते हैं।

किसी भी पुस्तक में ऐसे शब्द ज़रूर होंगे जो किसी-न-किसी के लिए नए होंगे। इनसे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। जब नए शब्दों को किसी परिचित संदर्भ में इस्तेमाल होते हुए देखते हैं, तो इससे हमारी खुद की भाषा का भी विकास होता है। दरअसल हम भाषा ऐसे ही सीखते हैं।

नैतिक मूल्य

नीरज जी अपनी कक्षा में बच्चों को एक किताब से कहानी पढ़कर सुना रही हैं। कहानी है 'खरगोश और शेर' की। आमतौर से पहली कक्षा के बच्चों को ये कहानी बहुत अच्छी लगती है, लेकिन नीरज जी की कक्षा के बच्चों के चेहरों से उदासीनता टपक रही है। वे जानते हैं कि मैडम कहानी खत्म होते ही पूछेंगी,

"अच्छा बच्चों बताओ, इस कहानी से हमें क्या सीख मिलती है?"

सदियों से कहानियों को नैतिक शिक्षा का माध्यम समझा जाता रहा है और आज भी लोग इस मानसिकता से निकल नहीं सके हैं। आमतौर पर हर 'बड़ा' जब किसी बच्चे के लिए कोई कहानी की किताब चुनता है तो उसकी यह जानने की तीव्र इच्छा होती है कि उस पुस्तक की कहानियों से शिक्षा मिलती है या नहीं।

इस विषय में हमें इतना चिंतित होने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि हर अच्छी पुस्तक में एक नहीं, अनेकों मूल्य गुँथे रहते हैं। बल्कि जब हम किसी मूल्य की ओर ज़बरदस्ती बच्चों का ध्यान आकर्षित करवाते हैं तो इससे यह खतरा हो जाता है कि बच्चा फिर बाकी मूल्यों की ओर ध्यान तक नहीं दे पाता। दूसरी ओर, यह भी ज़रूरी नहीं कि बड़े जिन मूल्यों की ओर बच्चों का ध्यान ज़बरदस्ती आकर्षित करवा रहे हैं, वे उस आयु के बच्चों की आवश्यकता हो ही।

हमारी बात का सीधा-सा मतलब यह है कि कहानी के संदेश को अलग से उभारने के बजाए उसमें निहित करके समग्र रूप में देखना चाहिए। बच्चों की बहुत-सी पुस्तकें दोस्ती, मिलकर काम करना, मुश्किलों को हल करना, सहिष्णुता जैसे मूल्यों को प्रस्तुत करती हैं। थोड़े बड़े बच्चों की पुस्तकें अधिक जटिल मूल्यों को संबोधित कर सकती हैं, उदाहरण के लिए, सही कार्य कैसे करें, या सही मार्ग कैसे चुनें?

यदि कहानी में सीख देने के लिए कृत्रिम परिस्थितियाँ गढ़ी गई हैं तो बच्चे इस बात को महसूस कर लेंगे कि असल जिंदगी में ऐसा नहीं हो सकता। इसलिए ''मेरी प्रिय नैतिक कहानियाँ'' या ''सर्वश्रेष्ठ शिक्षाप्रद कहानियाँ'' जैसी पुस्तकें बच्चों के लिए सबसे अधिक नीरस और उबाऊ साबित होती हैं, ना ही इन्हें पढ़कर बच्चों का नैतिक विकास होने की संभावना है। वास्तव में किसी कहानी में छुपी और गुँथी सीख देने का प्रयास किया जाए तो वे समझ जाते हैं कि ''बड़े'' कहानी के बहाने से उन्हें प्रशिक्षित करने का प्रयास कर रहे हैं। हमें बच्चों के मस्तिष्क का आदर करना चाहिए। उनका ये अधिकार है कि वे मुद्दों के बारे में अपनी स्वयं की राय बनाएँ। लेखक बिना उपदेश दिए या ब्रेनवॉश करने का प्रयास किए बिना केवल सकारात्मक परिस्थितियों का चित्रण करके भी सही और गलत की पहचान करवा सकते हैं। अब परीक्षा हमारी है कि हम बच्चों के लिए ऐसी बेहतरीन पुस्तकें खोज पाते हैं या नहीं जिनमें लेखक ने बिना उपदेश की मुद्रा में आए सही मार्ग दिखा दिया हो।

प्रामाणिकता

ज़ेबा के पिताजी उसके लिए कहानियों की एक किताब लाए हैं। उसे पढ़ते हुए ज़ेबा थोड़ी परेशान-सी हो गई... आखिरकार उससे रहा नहीं गया और वह अपने पिता के पास पहुँच गई। उसने किताब दिखाकर कहा ''अब्बू, ये कहानी बर्फ में रहने वाले दो भालुओं की है। मगर देखो तो, नारियल का पेड़ बना है। क्या नारियल के पेड़ बर्फीली जगहों में भी मिलते हैं?''

कभी न कभी हम सभी ने ऐसी विसंगतियों का सामना किया होगा। कई बार लेखक और चित्रकार अनजाने में या असावधानी से इस तरह

की 'दुर्घटनाएँ' कर बैठते हैं। कई बार तो इसका कारण यह होता है कि प्रकाशक पैसे बचाने के लिए इंटरनेट से काँट-छाँट करके चित्रों का जुगाड़ कर लेता है। कभी-कभी लेखक किसी विशेष संस्कृति या स्थान को आधार बनाकर कहानी लिखने का प्रयास करता तो है, लेकिन उसके पास उस संस्कृति या स्थान की सही जानकारी नहीं होती। पुस्तक में सांस्कृतिक और सामाजिक रूप से विविधता एक बहुत बेहतरीन गुण है क्योंकि इससे पुस्तक की उपयोगिता और महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है, लेकिन इस विविधता में प्रामाणिकता होनी चाहिए। यदि कहानी में किसी आदिवासी समूह की संस्कृति दर्शायी गई है तो इसका लाभ तभी है, जब उसमें वास्तविकता की झलक हो। कहानी के पात्रों की वेशभूषा, खान-पान, भाषा और कार्यों में उस संस्कृति की झलक नज़र आनी चाहिए। कई बार देखने में आता है कि कहानी तो भारत के गाँव में रहने वाले किसी बच्चे की है, लेकिन उसके चित्र किसी शहर या विदेश में रहने वाले किसी बच्चे की झलक पेश करते हैं। ऐसे चित्र पुस्तक को हास्यास्पद बनाने से अधिक कोई योगदान नहीं देते।

प्रामाणिकता गैर-कथात्मक पुस्तकों का भी अनिवार्य गुण है। यदि आप सूचनापरक पुस्तक चुन रहे हैं तो ध्यान दें कि उसमें तथ्यात्मक त्रुटियाँ नहीं होनी चाहिए।

बाल साहित्य का आकलन करने के लिए चेकलिस्ट

कहानी

1. क्या कहानियाँ बच्चों के लिए रोचक हैं?
2. क्या उनमें विभिन्न समस्याएँ सामने रखी गई हैं?
3. समस्याएँ कैसे हल की गई हैं?

पात्र/चरित्र

1. क्या पात्र विभिन्न सांस्कृतिक समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं?
2. क्या "अच्छे" पात्र विभिन्न पृष्ठभूमि के लोगों से हैं?
3. क्या नेतृत्व की भूमिका पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं द्वारा भी निभायी गई है?

विषयवस्तु

1. क्या कहानी बच्चों को सोचने, सवाल करने और विचार करने के लिए बहुत-सी चीज़ें उपलब्ध कराती है?
2. क्या कहानी में सीधे-सीधे मूल्यों को थोपने के बजाए उन्हें खोजने और अपने मूल्य बनाने के मौके हैं?

पृष्ठभूमि

1. क्या कहानियों में विविध पृष्ठभूमि दिखायी गई है।
2. क्या शहरी और ग्रामीण पृष्ठभूमि को वास्तविक रूप से दर्शाया गया है?

चित्र

1. क्या चित्र पर्याप्त संख्या में हैं?
2. क्या ये विभिन्न सांस्कृतिक समूहों का वास्तविक प्रदर्शन करते हैं?
3. क्या चित्र रोचक, आकर्षक और स्तरानुकूल हैं?
4. क्या चित्र सभी पूर्वाग्रहों से रहित हैं?

गुणवत्ता के कुछ और पैमाने

पुस्तक की छपाई की गुणवत्ता, रंग, अक्षरों का आकार, इस्तेमाल किया गया फॉण्ट, कागज़

और जिल्द की मजबूती आदि कुछ ऐसे पक्ष हैं जो किसी पुस्तक को बेहतर या बद्तर बना सकते हैं। पुस्तक का कागज़ ऐसा हो जो आसानी से फट ना जाए, वह इतना पतला ना हो कि पीछे छपी हुई सामग्री नज़र आए, छपाई साफ़ सुथरी हो और चित्रों या अक्षरों की स्याही फैली हुई ना हो, अक्षरों का आकार इतना बड़ा हो कि पढ़ते हुए पाठक की आँखों पर ज़ोर ना पड़े, पुस्तक का आकार इतना बड़ा हो कि पाठक को उसे पढ़ने, पकड़ने और संभालने में दिक्कत ना हो।

कैसे चुनें किताब?

अब तक हमने यह जाना कि बच्चों के लिए किताब चुनते समय किन-किन बातों को ध्यान में रखा जाए, अब हम इस बात पर विचार करते हैं कि किताब चुनी कैसे जाए?

बच्चों के लिए पुस्तक चुनने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि बच्चे स्वयं पुस्तक का चुनाव करें, कुसुम जी ऐसा ही करती हैं। वे बच्चों को अपने साथ ले जाती हैं। सबसे पहले यह देखती हैं कि पुस्तक के चित्र बच्चों को आकर्षित कर रहे हैं या नहीं। अगर पुस्तक देखने में आकर्षक है तो वे यह देखती हैं कि पुस्तक का कथानक रोचक है या नहीं। वैसे कभी-कभी तो पुस्तक के चित्र ही इतने प्रभावशाली होते हैं कि वे केवल चित्रों के कारण ही पुस्तक चुन लेती हैं, लेकिन वे इस कार्य में बच्चों की राय को ज़्यादा अहमियत देती हैं। उनका कहना है, ''मैं बच्चों को उनकी पसंद की किताबें चुनने और उनकी नापसंद की किताबें छोड़ने की पूरी आज़ादी देती हूँ। मैं यह भी जानने की कोशिश करती हूँ कि उन्हें किसी पुस्तक में कौन-कौन सी बातें अच्छी लगीं।''

दूसरी ओर मिश्रा जी कुछ अलग तरीका अपनाते हैं। उनके पास इतना समय या जानकारी नहीं है जितना कुसुम जी के पास है इसलिए वे यह देखते हैं कि पुस्तक या पुस्तक के लेखक को क्या कोई पुरस्कार मिला है या वह पुरस्कार के लिए नामांकित की गई है। उन्होंने अपने अनुभव से यह निष्कर्ष निकाला है कि सामान्यत: प्रसिद्ध साहित्य संगठनों जैसे-बाल पुस्तक ट्रस्ट द्वारा पुरस्कृत पुस्तकें बाकियों से बेहतर होती हैं। वे समाचार पत्रों आदि में समीक्षा पढ़कर या किसी मित्र द्वारा किसी पुस्तक की प्रशंसा सुनकर भी पुस्तक को चुनने के लिए प्रेरित होते हैं।

हम लता जी के तरीकों से भी बहुत कुछ सीख सकते हैं। वे पुस्तकालय के बाल खंड में जाकर यह देखती हैं कि कौन-कौन-सी पुस्तकें सबसे अधिक बार ली गई हैं। अगर पुस्तकालय की कोई पुस्तक बहुत अधिक पढ़ी जा रही है तो इसका मतलब वह पुस्तक बच्चों के लिए अवश्य ही रोचक पुस्तक है।

अब ज़हीर जी का उदाहरण देखते हैं। ज़हीर जी 40 वर्ष के हैं, लेकिन आज भी अपने बचपन को भूले नहीं हैं। वे किसी पुस्तक को देखते ही समझ जाते हैं कि बच्चों को वह पसंद आएगी या नहीं। उनका मानना है कि अगर उन्हें किसी पुस्तक को पढ़ने में आनंद नहीं आ रहा है तो बच्चों को भी नहीं आएगा। अगर हम ज़हीर जी की तरह बच्चों की नब्ज़ पर बड़े होने के बाद भी पकड़ रखते

हैं तो इस तरीके को अपना सकते हैं, लेकिन इस तरीके में बहुत सावधानी की ज़रूरत है। क्योंकि ज़रूरी नहीं कि जो किताब आपको रोचक लग रही हो वह बच्चों को भी रोचक लगे। किसी भी तरह के साहित्य को पसंद या नापसंद करना ''व्यक्तिगत'' मामला है। बाल साहित्य भी इससे परे नहीं है। जो किताब एक व्यक्ति को अनमोल लगती है, किसी दूसरे को बिल्कुल बेकार लग सकती है। किसी एक पीढ़ी को जो किताब अद्वितीय लगती है,अगली पीढ़ी को नीरस लग सकती है। बच्चे दुनिया को अलग नज़रिए से महसूस करते हैं। इसके अतिरिक्त, अलग-अलग उम्र में उनकी ज़रूरतें और पसंद भी बदलती रहती है। पुरानी पुस्तकें हमेशा ''क्लासिक्स'' नहीं होतीं।

ज़रूरी नहीं कि जो किताबें आपने अपने बचपन में पढ़ी थीं, वे आज की पीढ़ी को भी उतनी ही अच्छी लगें। हाँ, परीकथाएँ, पौराणिक कथाएँ आदि इसका अपवाद कही जा सकती हैं। क्योंकि वे किसी समय या स्थान की सीमा में बँधी हुई नहीं हैं। ज़हीर जी कहते हैं, ''आपको अपने बचपन में जो किताबें शानदार लगीं थी, बच्चों को उनसे परिचित तो करवाइए, लेकिन इस बात का फैसला उन्हीं पर छोड़ दीजिए कि वे उन्हें पढ़ना चाहते हैं या नहीं।''

> नवीनता और ताज़गी बच्चों की पुस्तकों में अवश्य नज़र आनी चाहिए। यदि कहानी पारंपरिक भी है, तो भी उसकी प्रस्तुति में नयापन उसे आकर्षक बना देता है। यहाँ यह भी ध्यान देना ज़रूरी है कि नवीनता के नाम पर केवल दिखावा या आडंबर न हो। कई बार प्रकाशक केवल लीक से हटकर कुछ करने के लिए बिना किसी औचित्य के ऐसे चित्र छाप देते हैं जिनका बच्चों की रुचि और आयु से दूर-दूर तक का वास्ता नहीं होता। इस तरह के आडंबर से बचने की भी ज़रूरत है।

लता जी का कहना है, ''कुछ लोग बच्चों के लिए पुस्तकें चुनने का सबसे आसान रास्ता पकड़ लेते हैं। वे पारंपरिक कहानियों की पुस्तकें जैसे-पंचतंत्र, जातक कथाएँ, दादा-दादी की कहानियाँ जैसे नामों से मिलने वाली पुस्तकें आँख बंद करके चुन लेते हैं। इस बात में कोई शक नहीं कि पारंपरिक कहानियाँ हज़ारों सालों से बच्चों को लुभाती आ रही हैं, लेकिन आजकल इन कहानियों के ऐसे घटिया संस्करण भी बाज़ार में छाए हुए हैं कि उन्हें पढ़कर शायद बच्चों की पढ़ने की इच्छा भी समाप्त हो जाए। यदि आप बच्चों को पारंपरिक कहानियों की पुस्तक देना चाहते हैं तो कम-से-कम तीन या चार प्रकाशकों के संस्करण देखकर सबसे बेहतर का चुनाव करें।''

आखिरी बात

संभवत: बच्चों की हर किताब उत्कृष्टता के हर मानक को पूरा नहीं कर सकती। इसलिए कई मामलों में, एक विशेष पुस्तक का मूल्यांकन करते हुए आपको उन पहलुओं को नज़रअंदाज़ करना होगा जिनके बारे में आप आश्वस्त नहीं हैं। कई बार कोई पुस्तक आपको इतनी पसंद आ जाएगी कि उसकी एक-दो कमियों पर आप

ध्यान नहीं दे सकेंगे, लेकिन प्रयास करें कि आपके संग्रह में ऐसी पुस्तकें ही हों जो अच्छी पुस्तक होने की हर कसौटी पर खरी उतरे। यदि आप नियमित रूप से पुस्तकें खरीदते हैं तो इस बात को ध्यान में रखें कि आपके बच्चों के संग्रह में विविध पृष्ठभूमियों, संस्कृतियों, लोगों, विषयों, आयु वर्गों और लैंगिक समूहों से संबंधित पुस्तकें मौजूद हों। आपके संग्रह में सभी विधाओं को स्थान मिलना चाहिए जैसे–कहानी, कविता, परीकथाएँ, यात्रा वर्णन, लोक कथाएँ, विज्ञान कथाएँ, चित्र कथाएँ, कॉमिक्स, गैर कथात्मक साहित्य आदि। विविध दृश्यों, लुभावनी कहानियों और प्रभावशाली चरित्रों वाली कहानियाँ आपके बच्चों का केवल मनोरंजन ही नहीं करेंगी, बल्कि ज़िंदगी भर के लिए उन्हें एक नियमित पाठक बना देंगी।

❑❑❑

4

बाल साहित्य के झरोखे से

उषा शर्मा*

बाल साहित्य एक ऐसी पूँजी है जो बच्चों के संसार को अनेक तरह से समृद्ध करती है। बच्चे स्वयं भी कविता, कहानी बनाते हुए अपनी रचनात्मकता को संतुष्ट करते हैं। इस प्रकार बाल-काव्य की रचना बचपन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जिसके ज़रिये बच्चे अपने परिवेश की पहचान करते हैं, उस पर अपनी प्रतिक्रिया करते हैं और अपना मनोरंजन करते हैं। बाल-काव्य का सहज, सरल भाव, संगीतात्मकता, छंदमयता, खेलभाव और आनंददायक मज़ेदार ध्वनियों की कल्पनाशील उड़ान हमें बरबस ही अपनी ओर आकर्षित करती है। चित्रात्मकता, रोचकता और बच्चों की दुनिया से जुड़ा बाल साहित्य बच्चों को बरबस ही अपनी ओर खींचता है। बाल साहित्य अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न अवधारणाओं, मूल्यों और भाषा-विकास को भी पोषित करता है।

बच्चों की दुनिया में दाखिल होने का अनुभव बेहद ख़ास होता है। ख़ास इस मायने में कि उनकी दुनिया में कोई चीज़ क्या रूप लेगी - कहा नहीं जा सकता। ख़ास इस मायने में भी कि कौन-सी चीज़ उनके चेहरे पर कब मुस्कान ले आए, उन्हें कब गुदगुदा जाए- पता नहीं। बच्चों की दुनिया में सब कुछ इतना चमत्कारिक होता है कि आप अनुमान ही लगाते रह जाएँगे।

विकास की दृष्टि से विद्यालय-पूर्व स्तर के बच्चे अपने प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा सर्वाधिक सीखते हैं।

लाडो सराय स्थित आँगनबाड़ी में छोटे बच्चों के साथ काम करते हुए यह जानने का अवसर मिला कि रंगीन चीज़ें उनके आकर्षण का केंद्र होती हैं। अगर रंगीन तस्वीरें बड़ी हों तो आकर्षण दुगना हो जाता है। इसका प्रमुख कारण संभवत: यह हो सकता है कि बड़े आकार की तस्वीर में वे सभी चीज़ों पर सरलता से गौर कर सकते हैं या बड़े आकार की रंगीन तस्वीरें पूरी तरह खुलकर स्वयं को अभिव्यक्त करती हैं। कहीं कोई दुराव-छिपाव नहीं होता। हर बारीक चीज़ को पैनी नज़र से देखना संभव होता है। अवधारणाएँ बनने में नज़र का यही पैनापन काम आता है। किताबों में आई उन तस्वीरों को देखकर वे ज़्यादा खुश होते हैं जो पहले से ही उनके आस-पास मौजूद

* एसोसिएट प्रोफ़ेसर, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली -110016

होती हैं। उन चीज़ों को किताब में कैद होता देख वे आश्चर्यचकित हो जाते हैं। तब उनकी अभिव्यक्ति कुछ इस तरह होती है – ''अरे! यह तो गेंद है। मेरे पापा भी मेरे लिए गेंद लाए थे।'' किसी चीज़ को देखकर उसे पहचानना, नाम देना और फिर उसे अपने पूर्व अनुभवों, निकटीय परिवेश से जोड़ने की यह प्रक्रिया पूर्व प्राथमिक स्तर के बच्चों की पहचान है। यह भी ठीक है कि इस स्तर के बच्चों को अक्षर बोध नहीं होता, जिसकी वजह से वे पाठ्य-सामग्री (शब्द, वाक्य) नहीं पढ़ पाते। शब्दों, वाक्यों से बँधी भाषा जो करना चाहती है, उसे चित्रों की भाषा और भी अधिक सृजनात्मक तरीके से कहने की सामर्थ्य रखती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि शब्द और वाक्य कथ्य को अपनी अर्थगत परिधि से बाँध देते हैं, लेकिन चित्रों की भाषा के साथ ऐसा नहीं होता।

चित्रों की भाषा ऐसी स्वच्छंदता, उन्मुक्तता प्रदान करती है कि 'पढ़ने' वाला अपने कथ्य को स्वयं गढ़ता है। जहाँ बंधन न हो वहीं स्वच्छंदता और सृजनात्मकता अपना साम्राज्य स्थापित करते हैं। इसलिए चित्रात्मक किताबें बच्चों के लिए हमेशा आकर्षण का केंद्र रही हैं। आँगनबाड़ी के बच्चों के साथ यह अनुभव भी रहा कि रंगीन चित्रात्मक किताबों को देखते ही बच्चों के भीतर उसे छूने, पकड़ने और उसके भीतर की दुनिया में झाँकने के लिए पन्ने-दर-पन्ने पलटने की उत्कट इच्छा बच्चों को सक्रिय बना देती है। पढ़ना शुरू करने की प्रक्रिया का पहला सोपान यही है कि हम किताबों के प्रति आकर्षण महसूस करें और खोलकर देखने की तीव्र इच्छा भी। एक बार किताब खुलते ही उसमें मौजूद अवधारणाओं का संसार भी धीरे-धीरे खुलने लगता है। दरअसल, बच्चों की प्रतिक्रिया ही इन अवधारणाओं के बनने का प्रमाण है। जब वे चीज़ों की पहचान कर उन्हें नाम देते हैं तो स्वत: स्पष्ट हो जाता है कि उनके मस्तिष्क में अवधारणाएँ मौजूद हैं। अधूरी अथवा गलत अवधारणाएँ भी चित्रों और चित्रों पर बातचीत करने के माध्यम से संशोधित, परिवर्तित होती चलती हैं। एक बात और जो इन अवधारणाओं के संदर्भ में महत्वपूर्ण है, वह है – संदर्भयुक्त परिवेश में अवधारणाओं का बनना।

पूर्व प्राथमिक स्तर के बच्चों के विभिन्न आयामों शारीरिक, मानसिक, भाषिक, समाज-संवेगात्मक आदि का विकास करने के लिए अकसर शिशु गीतों, कविताओं, चित्रात्मक कहानियों का सहारा लिया जाता है। **इस स्तर के बच्चों का यह साहित्य अर्थात् बाल साहित्य इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि वह अपने भीतर बच्चे के पूर्वोक्त आयामों के विकास की संभावनाओं को समेटे हुए है। रंगीन चित्र सदा से ही बच्चों के आकर्षण का केंद्र रहे हैं। गीतों की लयात्मकता, बाल-छंद, ताल, संगीत का माधुर्य भी उन्हें सम्मोहित करता है। कहानियों का जादू तो सिर चढ़कर बोलता है।** अत: ज़रूरी है कि पूर्व प्राथमिक स्तर के बच्चों के लिए सावधानीपूर्वक बाल साहित्य का चयन किया जाए और उन्हें बच्चों को उपलब्ध कराया जाए।

हम सभी ने अपने बचपन में कभी न कभी कुछ पंक्तियों की रचना ज़रूर की होगी। फिर ये पंक्तियाँ चाहे किसी को चिढ़ाने के लिए कही गई हों या किसी कविता को विस्तार देने की कारस्तानी हो। हम जानते ही हैं कि खेल-खेल में बाल-काव्य की रचना बचपन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जिसके ज़रिये बच्चे अपने परिवेश की पहचान करते हैं, उस पर अपनी प्रतिक्रिया करते हैं और अपना मनोरंजन करते हैं। बाल-काव्य का सहज, सरल भाव, संगीतात्मकता, छंदमयता, खेलभाव और आनंददायक मज़ेदार ध्वनियों की कल्पनाशील उड़ान हमें बरबस ही अपनी ओर आकर्षित करती है। कई बाल-काव्यों में हमें गाँव के जीवन की झलकियाँ देखने को मिलती हैं, जैसे –

'चक्की चलाई मैंने धनिया बोया
हाँ सखी री धनिया बोया।
धनिये में दो किल्लन फूटे
हाँ सखी दो किल्लन फूटे।
किल्लन मैंने गऊ चराई.....'

'चल चमेली बाग में
मेवे खिलाएँगे।
मेवों की टहनी टूट गई
चादर बिछाएँगे।
चादर का कोना फट गया
दर्जी बुलाएँगे...'
'चल चमेली बाग में
मेवे खिलाएँगे।
मेवों की टहनी टूट गई
चादर बिछाएँगे।
चादर का कोना फट गया
दर्जी बुलाएँगे...'

गाँव की बोलियों का प्रयोग यहाँ बहुत स्पष्ट है। इसी तरह से बाल-काव्य में अलग-अलग संस्कृतियों की भी झलकियाँ मिलती है –

'लाहौल, विलाकुव्वत, मिन कुल्ले सपाटा,
कल रात को मच्छर ने बड़े ज़ोर से काटा।'

बाल-काव्य तो एक लोक परंपरा है। कविताओं में परिवर्तन खुद बच्चे लाते हैं, चूँकि इस तरह का प्रचलित बाल-काव्य लिखित रूप में उपलब्ध नहीं है इसलिए इसमें समय के साथ और नयी ज़रूरतों के चलते बच्चों द्वारा ही परिवर्तन और परिवर्धन किया जाता है जो इसे प्रकारांतर से विकसित और समृद्ध करता है। लोक परंपरा में परिवर्तन एक क्रमिक प्रक्रिया है और बच्चों का सामूहिक योगदान एक साधन है। उदाहरण के लिए **'अक्कड़ बक्कड़'** कविता को ही लीजिए। कहीं तो आपको मिलेगा –

'सौ में लगा धागा
चोर निकलकर भागा'

तो कहीं इसका स्वरूप है–

'सौ गलोटा तीतर मोटा
चल मदारी पैसा खोटा'

नहीं तो **'चोर निकल के भागा'** के बाद कई स्थानों पर प्रचलित है –

'रानी की बेटी सोती थी
स्वप्न नगर में रहती थी'

और कई जगहों पर इसमें नया पद जुड़ जाता है –

‘रेल आई छम-छम
आलू कूटा धम-धम’

इस तरह अलग-अलग मिलने वाले इन पदों में सामूहिकता का पुट है और इस प्रक्रिया में किसी का भी योगदान हो सकता है। यह योगदान कब, किस तरह हुआ इसके बारे में बताना संभव नहीं। अगर किसी नयी कविता का सृजन होता है तो उसके स्थायित्व का दारोमदार बच्चों की उसके प्रति सहमति पर ही निर्भर करता है।

बाल साहित्य का प्रकाशन करने वाली कुछ प्रमुख संस्थाएँ इस प्रकार हैं, जो एक लंबे अरसे से इस महत्ती यज्ञ की ज्योति को प्रज्वलित किए हुए हैं – चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट, नेशनल बुक ट्रस्ट, एकलव्य, कथा, तूलिका, प्रकाशन विभाग, स्कॉलास्टिक, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् आदि।

समय के साथ-साथ और समय की माँग को देखते हुए बाल साहित्य की विषय-वस्तु में परिवर्तन आया है। कोरी उपदेशात्मकता की परिपाटी से हटते हुए बच्चों के बहुत ही निजी संसार को किताबों में जगह दी गई है। शिक्षा के बदलते परिप्रेक्ष्य और बदलती ज़रूरतों को संबोधित करते हुए बाल साहित्य का स्वरूप भी शिक्षा के समावेशी रूप की तरह सभी तरह के बच्चों का ध्यान रखने लगा है। नेशनल बुक ट्रस्ट ने इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है। वे बच्चे जिनके पास दृष्टि नहीं है अथवा क्षीण दृष्टि हैं, वे भी बाल साहित्य की दुनिया का आनंद ले सकें – इस चिंतन को प्रश्रय देते हुए नेशनल बुक ट्रस्ट ने ‘तीन मछलियाँ’ शीर्षक कहानी को स्पर्श संवेदी बनाया है, हालाँकि यह किताब अन्य बच्चों के लिए भी उपयोगी है, लेकिन दृष्टिहीन बच्चे भी इससे लाभ उठा सकते हैं।

‘तीन मछलियाँ’ में तीन मछलियों की अलग-अलग अनुभूति करवाने के लिए उन्हें अलग ‘टेक्स्चर’ दिया गया है। हाँ, आकार में तो अंतर है ही। इतना ही नहीं पानी, समुद्र का स्पर्श संवेदी अनुभव देने के लिए उच्च कोटि का सेलोफ़िन पेपर इस्तेमाल किया गया है। इसी तरह से एक और किताब ट्रस्ट ने प्रकाशित की है –

‘लाली और काली’। ऐसा चिंतन और ईमानदारी भरा क्रियान्वयन आज के दौर में बेहद ज़रूरी है। अन्य प्रकार से अन्य शारीरिक चुनौतियों वाले बच्चों के लिए इस दिशा में और अधिक चिंतन की आवश्यकता है। वे बच्चे जो किसी कारणवश सुन नहीं सकते अथवा बोल नहीं सकते, उनके लिए भी बाल साहित्य उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

चित्रात्मकता की चर्चा के बिना बाल साहित्य की चर्चा अधूरी और बेमानी लगती है। वास्तव में चित्र अपने आप में ही एक

भाषा हैं। चित्र बच्चों के मानस पटल पर गहरे स्मृति चिह्न छोड़ते हैं जो काफ़ी लंबे समय तक उनके मस्तिष्क में बने रहते हैं। अत: न सिर्फ़ अवधारणाओं के स्पष्टीकरण में बल्कि भाषा के शिक्षण में भी ये चित्र भरपूर मदद करते हैं। चित्र बच्चों के लिए सीखने का विस्तृत कैनवास तैयार करते हैं। **बच्चों को न केवल चित्र देखना अच्छा लगता है, बल्कि चित्रों से बातें करना, चित्रों के बारे में बातें करना और चित्र बनाना भी उन्हें खूब अच्छा लगता है।** चित्र वस्तु और रंगों की पहचान कराने में भी सहायक होते हैं। चीन की भाषा मंदाकिनी की लिपि तो चित्रलिपि ही है। भाषा या कोई भी विषय हो, चित्र चाहे किसी भी रूप में हो रेखाचित्र, आरेख, डायग्राम या ग्राफ किसी भी स्तर पर संदर्भ को समझने में बहुत सहायक होते हैं। यदि यह कहें कि चित्रों के अभाव में किसी भी विषय को सुगमता से नहीं समझा जा सकता तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इतना ही नहीं चित्र की सहायता से शिक्षिका बच्चों में अनुमान लगाने का कौशल भी विकसित कर सकती है।

चित्रों की इसी महत्ता को देखते हुए ऐसा बाल साहित्य प्रकाशित किया जा रहा है जिसमें सिर्फ़ और सिर्फ़ चित्र हैं, चित्र ही भाषा हैं तथा चित्रों की आवाज़ सुनी जा सकती है। नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तकें **'आधे गोल चक्कर', 'गुब्बारा', 'आम की कहानी', 'पशु-पक्षी का नाम बताएँ'** ऐसी ही चित्रात्मक पुस्तकें हैं। इनमें चित्र ही कथा कहते चलते हैं।

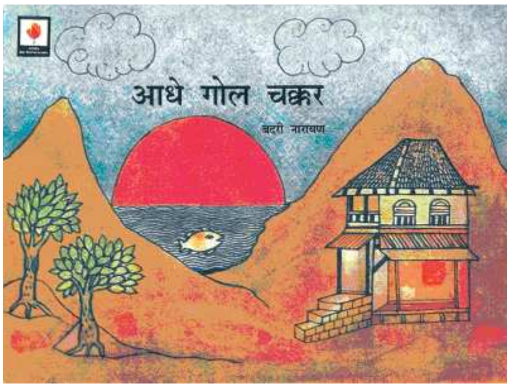

ट्रस्ट ने और भी ऐसी ही पुस्तकें प्रकाशित की हैं – **'चिड़ियाघर की सैर', 'घर और घर'** आदि। ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित **'गुब्बारा'** शीर्षक पुस्तक में एक शब्द भी नहीं है, लेकिन उसमें कथानक की दृष्टि से कहीं भी झोल नहीं है। हर चित्र अपनी बात कहने में सक्षम है। चित्रों की चुस्तबयानी देखने लायक है।

इसी तरह **'आम की कहानी'** में भी आम के हाथ से निकल जाने से लेकर उसके हाथ में आ जाने तक की कहानी को बेहद रोचक और सुंदर अंदाज़ में प्रस्तुत किया गया है। दरअसल, जब बच्चे चित्र कथाओं के पन्नों से एक-एक करके गुज़रते हैं तो एक कहानी

उनके मस्तिष्क में जन्म ले लेती है। पन्नों के पलटने के साथ उस 'मानसिक कहानी' का भी विकास होता चलता है। फिर भाषा हो या न हो-बच्चों को कोई फ़र्क नहीं पड़ता। बच्चे चित्रों के सहारे अनुमान लगाने की क्षमता का भी संवर्द्धन करते हैं।

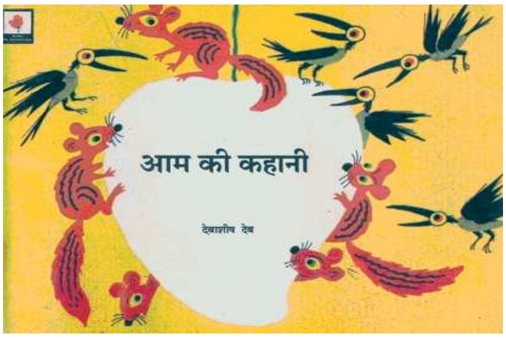

चित्र रूपी बीज से जो काल्पनिक कथा रूपी पेड़ बनता है उसका खाद, पानी, रोशनी सभी कुछ चित्र ही हैं। चित्र अपने आप में कहानी कहने में सक्षम हैं। इन चित्रों के सहारे न केवल भाषा का मज़बूत किला खड़ा किया जा सकता है, बल्कि अवधारणाओं की पुख्ता नींव भी रखी जा सकती है। भाषा और संप्रत्यय साथ-साथ ही विकसित होते चलते हैं। नेशनल बुक ट्रस्ट, एकलव्य, स्कॉलास्टिक ने कुछ ऐसे बाल साहित्य का भी प्रकाशन किया है जो चित्र प्रधान तो है ही, लेकिन उनमें एक-दो वाक्यों से चित्रों को पुष्ट किया गया है। कथ्य और अभिव्यक्ति के स्तर पर सरल और गुँथे हुए वाक्य कहीं भी किसी प्रकार का अवरोध पैदा नहीं करते । इनसे भाषा-संवर्द्धन में ही सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए -

- ज़ेबरा जाग गया (हाथी की हिचकी)
- फिर एकदम से फट गया (गुब्बारे)
- 'मुझे भी', चूजा बोला। (मैं भी........)
- एक था लाल (पत्ते ही पत्ते)
- लालू दु:खी हो उठा। (लाल पतंग और लालू)
- मुझको धरती प्यारी लगती है। (कितनी प्यारी है यह दुनिया)
- बिल्ली के तीन बच्चे थे। (बिल्ली के बच्चे)
- अम्मा जागी भोर भई। (भोर भई)

इन वाक्यों पर गौर करें तो कहा जा सकता है कि शब्दों का चयन, वाक्यों का चयन बच्चों के स्तरानुसार है। नि:सन्देह पूर्व प्राथमिक बच्चे इन्हें न भी पढ़ पाएँ, लेकिन उन्हें यह अहसास ज़रूर होगा कि जो तस्वीरें ऊपर दिखायी गई हैं, ये नीचे वाली/ऊपर वाली एक पंक्ति में आई तस्वीरें (शब्द, वाक्य) उन्हीं से जुड़ी हुई हैं। फिर बच्चे अनुमान लगाना प्रारंभ करते हैं। सही अनुमान उन्हें पढ़ने, देखने के लिए प्रेरित करता है।

भाषा की दृष्टि से विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रकाशित और अध्ययन में शामिल बाल साहित्य बच्चों के शब्द भंडार में वृद्धि करता है। समग्र रूप से इन शब्दों की अनेक संदर्भों में अनेक कोटियाँ बन सकती हैं। उदाहरण के लिए, बच्चे की दृष्टि से परिचित/अपरिचित, स्थानीयता की दृष्टि से आँचलिक/ स्थानीय/शहरी, प्रयोग की दृष्टि से सक्रिय/निष्क्रिय और शब्द-भेद की दृष्टि से संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण, परसर्ग आदि अनेक तरह

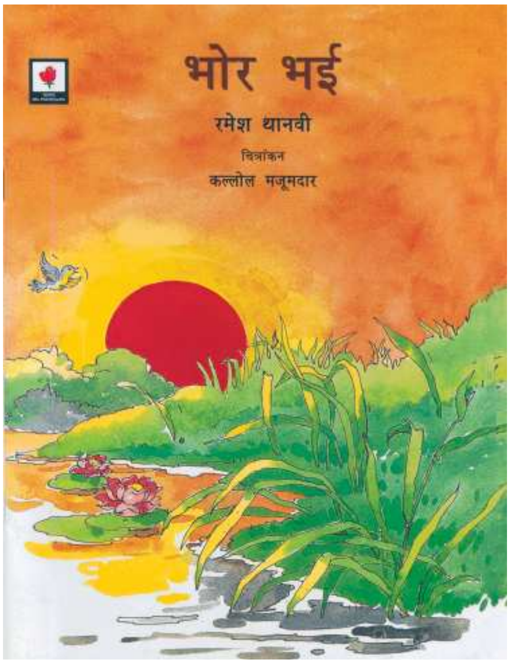

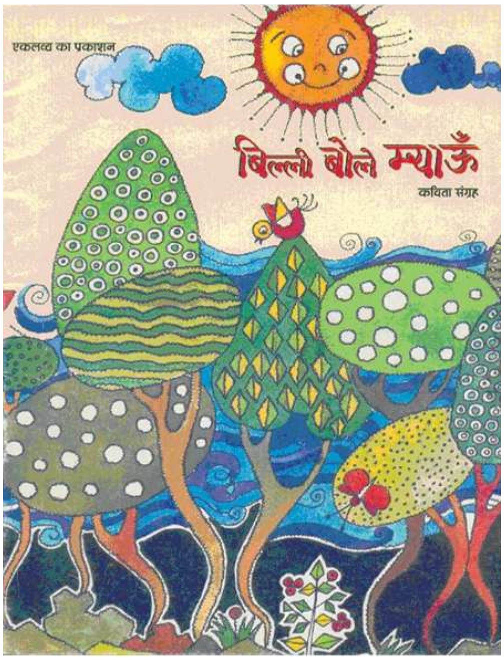

के शब्दों की भरमार है। इस बाल साहित्य में – **'महके सारी गली गली'**, **'भोर भई'**, **'अक्कड़-बक्कड़'**, **'बिल्ली बोले म्याऊँ'** में आँचलिक शब्दों को समुचित स्थान दिया गया है।

इससे दो लाभ हैं– एक, आँचलिक शब्द बच्चों के बेहद करीबी दोस्त हैं और दूसरा, इन शब्दों के बहाने, अपनी परंपरा, संस्कृति को जानने, उससे जुड़ने और उसे आगे बढ़ाने की प्रेरणा मिलती है। **शब्द जितने बच्चों के करीब होंगे, बच्चे भी उतना ही किताब के करीब होंगे।** आँचलिक शब्दावली के उदाहरण इस प्रकार हैं–

'जा चकिया के तीन देवता,
कीला, मुठिया, यानी।
चकिया घूमे घानी-मानी
चकिया घूमे घानी-मानी' (**चकिया – अक्कड़-बक्कड़**)

'एक दिन झटपट
गया वो पनघट।
जमघट में हो गई
उसकी सरपट।' (**खट-खट – बिल्ली बोले म्याऊँ**)

'बाँका तिरहा छेल चिकनिया
पहने अचकन और सुथनिया।' **(चला चाँद से-महके सारी गली गली)**
'भाग्य कहाँ जो, छींका टूटे या फिर फूटे, घी की मटकी।'
(घी की मटकी - महके सारी गली गली)

शब्दों की एक श्रेणी ध्वन्यात्मक शब्दों की है जो केवल ध्वनियों के माध्यम से ही पूरा चित्रमय संसार उपस्थित कर देते हैं। ये ध्वन्यात्मक शब्द विभिन्न प्रकार की क्रियाओं और उनकी गहनता को समझने में सहायता करते हैं। यह भी सत्य है कि कई अवधारणाएँ बनने में ध्वन्यात्मकता काम करती है। ध्वनि और किसी वस्तु का परस्पर संबंध या तादात्म्य जब स्थापित होता है तो वस्तु की अनुपस्थिति में केवल ध्वनि मात्र से ही वस्तु की छवि उभरने लगती है। इस प्रकार मानसिक छवियाँ बनाने में ध्वन्यात्मक शब्दों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसी प्रकार के ध्वन्यात्मक शब्दों की कुछ बानगियाँ इस प्रकार हैं -

'धम्मक धम्मक आता हाथी
धम्मक धम्मक जाता हाथी' **धम्मक-धम्मक - बिल्ली बोले म्याऊँ**

'अररररररररररर पानी आया!
हररररररररररर पानी आया!' **पानी आया - बिल्ली बोले म्याऊँ**

'धक्-धक्, धक्-धक्, छू-छू, छू-छू!
भक्-भक्, भक्-भक्, भू-भू, भू-भू!
छक्-छक्, छक्-छक्, छू-छू, छू-छू!' **मेरी रेल - महके सारी गली गली**

'करती आई रेल!
हिक्-हिक्, आच्-छी!' **हाथी की हिचकी**

शब्दों की ध्वन्यात्मकता के अतिरिक्त इस बाल साहित्य का एक और मज़बूत पक्ष है। वह है - शब्दों, वाक्यांशों, वाक्यों की संदर्भगत सटीक पुनरावृत्ति, भाषायी पुनरावृत्ति से अर्थ का पुष्टिकरण तो होता ही है, साथ ही शब्दगत, वाक्यगत स्थायित्व भी आता है। शब्दों, वाक्यों की पुनरावृत्ति एक प्रकार का लयात्मक वातावरण भी पैदा करती है। पुनरावृत्ति का बच्चों के भाषिक विकास पर एक सकारात्मक प्रभाव यह पड़ता है कि वे शब्दों के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए उन पर अपनी पकड़ को मज़बूत बनाते हैं। भाषायी पुनरावृत्ति अवधारणाओं को भी पुष्ट करती है और भाषायी विकास को भी। बच्चे उनमें से अपने लिए अर्थपरक नियम ढूँढ़ ही लेते हैं। फिर उन नियमों के आधार पर भाषा का सृजनपरक इस्तेमाल करते हैं। भाषायी पुनरावृत्ति के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

- "मैं घूमने जा रहा हूँ", बत्तख का बच्चा बोला।

"मैं भी चलूँगा", चूज़ा बोला।
"मैं गड्ढा खोद रहा हूँ", बत्तख का बच्चा बोला।

"मैं भी खोदूँगा", चूजा बोला। **(मैं भी .....)**

- शेर जाग गया/ज़ेबरा जाग गया/चूहा जाग गया। **(हाथी की हिचकी)**
- उसने पानी पिया/और पिया/और पिया/और पिया **(हाथी की हिचकी)**

बाल-मन को प्रिय 'खेल' बाल साहित्य की एक मुख्य विषय-वस्तु के रूप में प्रतिस्थापित है। बच्चों के संदर्भ में 'खेल' की संकल्पना कई रूपों में उभरती है। उनमें से प्रमुख दो संरचनाएँ हैं – **खेल-खेलना** (गिल्ली-डंडा, छुपन-छुपाई, आँख-मिचौनी आदि) और **शब्दों से खेलना**। दरअसल बच्चों को ये दोनों खेल ही बेहद पसंद हैं। खेल की दोनों संकल्पनाएँ अध्ययन में शामिल बाल साहित्य में पूरे दम-खम के साथ मौजूद हैं। एकलव्य द्वारा प्रकाशित **'अक्कड़-बक्कड़'** शीर्षक काव्य संग्रह की ज़्यादातर रचनाएँ वास्तव में खेल गीत ही हैं जिन्हें बच्चे खेलते हुए गाते हैं –

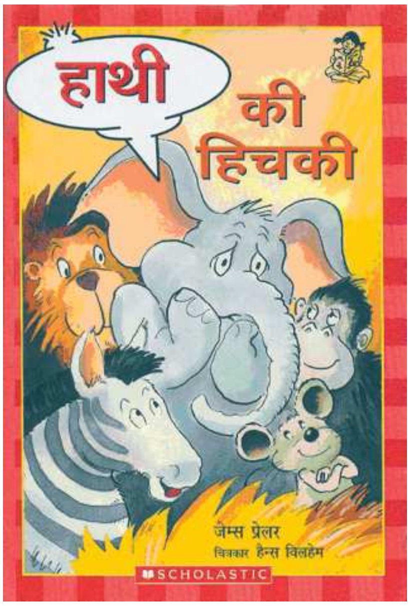

'अक्कड़-बक्कड़, बम्बे बो
अस्सी नब्बे, पूरे सौ
सौ में लगा धागा,
चोर निकलकर भागा।'
(अक्कड़-बक्कड़)

'पोशम्पा भई पोशम्पा,
डाकुओं ने क्या किया
सौ रुपए की घड़ी चुराई,
अब तो जेल जाना पड़ेगा,
जेल की रोटी खानी पड़ेगी।'

(पोशम्पा-अक्कड़-बक्कड़)

खेल की दूसरी संकल्पना में **शब्दों से खेलना** शामिल है। शब्दों से खेलना दरअसल भाषा का सृजनात्मक प्रयोग है। बच्चे अपने भाव, विचार, लय, ताल के अनुसार शब्दों को तोड़-मरोड़ कर इस्तेमाल करते हैं। इस संदर्भ में प्रो. कृष्ण कुमार का मानना है कि 'अधिकांश बच्चों के लिए शब्द ढाई साल की उम्र से खेल और आनंद का एक प्रमुख साधन बन जाते हैं। अलग-अलग स्वर में दोहराकर, नए रूपों और मौलिक संदर्भों में रखकर बच्चे शब्दों से खेलते हैं और संतुष्ट होते हैं -

'दूध जलेबी जग्गग्गा,
पर इसमें है मग्गग्गा।
मैं चम्मच में बाल्टी रखूँगा,
उससे कुएँ का दूध निकालूँगा।'

अनुपयुक्त जगह पर शब्द का प्रयोग करना उन्हें भाता है। उन्हें ऐसी कविताएँ जल्दी से याद हो जाती हैं, जिनमें इसी तरह शब्दों की खींच-तान की गई हो। आशय यह है कि छोटे बच्चे शब्दों को खिलौनों की तरह इस्तेमाल करते हैं। बच्चों के खेलगीत भाषा के बेहद रचनात्मक और ताकतवर इस्तेमाल के निराले स्रोत हैं और वे भाषा के कई बुनियादी कौशल सिखाने के बहुत उपयोगी साधन हैं।

बाल साहित्य की एक कसौटी है कि उसकी विषय-वस्तु में वैविध्य होता है। यहाँ एक सवाल यह उठता है कि बाल साहित्य की विषय-वस्तु में क्या-क्या होना चाहिए। चूँकि यह बच्चों का साहित्य है तो ज़ाहिर-सी बात है कि विषय-वस्तु भी उन्हीं की दुनिया की होगी। तो दूसरा सवाल आता है - उनकी दुनिया में क्या-क्या है? तीन से छह साल तक के बच्चों की दुनिया में शामिल हैं - तरह-तरह के खेल, पशु, पक्षी, संगीत, प्राकृतिक उपादान सूरज, चाँद, तारे, बादल, बारिश की छमाछम गिरती बूँदें, उनका परिवार, माता-पिता, भाई-बहन, दादा-दादी, नाना-नानी, चाट-पकौड़ी, मिठाई, दाता, मिट्टी, कँकड़, खिलौने, दूध-मलाई आदि।

इस बाल साहित्य में बच्चों की दुनिया से जुड़े ये सभी विषय शामिल हैं। चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित **'शोभना'** शीर्षक कहानी में गाय, उसका बछड़ा, यातायात के साधनों का ज़िक्र है तो **'अशोक की हरी पतंग'** में 'पतंगबाजी' का खेल। **'आओ गिनें बादल'** में मस्ती मारते छोटे-बड़े, आँके-बाँके बादल और उनके करतब।

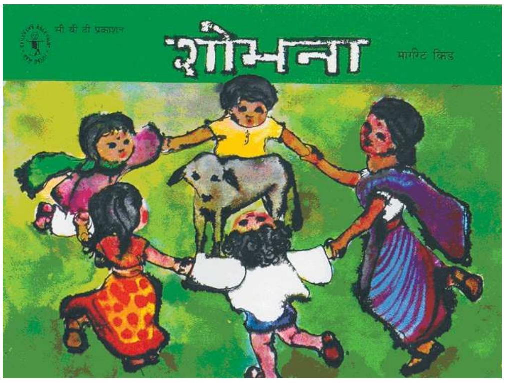

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा प्रकाशित **'बरखा'** पुस्तक माला की **'मीठे-मीठे गुलगुले'** और **'शरबत'** में खाने-पीने की चीज़ों का ज़िक्र है तो **'गिल्ली-डंडा'** में बच्चों का पसंदीदा खेल लिया गया है, इसी पुस्तकमाला की कहानी **'पत्तल'** में बच्चे पत्तों से पत्तल बनाते हैं और पत्तल में खाना परोसते हैं। तो **'मेरे जैसी'** में शरीर के अंगों की बात आई है।

नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित **'तीन मछलियाँ'** शीर्षक कहानी में जलीय जीव जंतु और मछुआरों के बहाने हमारे कामगारों की चर्चा है तो **'पशु-पक्षी का नाम बताएँ'** में पूरा पशु-पक्षी जगत साकार हो जाता है। यही पशु-पक्षी जगत 'आम की कहानी' में भी नज़र आता है जब बच्चे आम को हासिल करने के लिए अलग-अलग जीव-जंतुओं के दर्शन करते हैं। **'लाल पतंग और लालू'** में पतंगबाजी, गाय-भैंसों को चराने के माध्यम से ग्रामीण परिवेश झलकता है तो **'भोर भई'** में भोर होने पर क्या-क्या होता है। उसकी एक पूरी दिनचर्या दिखायी गई है। इसमें भी ग्रामीण परिवेश को स्थान दिया गया है। **'कितनी प्यारी है यह दुनिया'** में तो बच्चों का पूरा संसार एक ही जगह सिमट आता है। उसमें हवा, चिड़ियाँ, जानवर, मछलियाँ, समुद्र, माता-पिता, भाई-बहन, कपड़े, खिलौने, किताबें, फूल-पौधे आदि की भी बहुत खूबसूरत प्रस्तुति है।

'महके सारी गली-गली', **'अक्कड़ - बक्कड़'** और **'बिल्ली बोले म्याऊँ'** में संग्रहित कविताओं में भी विषयगत वैविध्य देखने को मिलता है। इतना ही नहीं विज्ञान से जुड़ी अवधारणाओं को स्पष्ट करने संबंधी रचनाएँ भी मौजूद हैं -

'एक समय थे तीन कुम्हार,
बड़े चतुर बहुत होशियार।
नाव बनाकर एक मिट्‌टी की,
वे चले समुंदर पार।
पानी में जो नाव न घुलती
बात हमारी आगे चलती।'

(कुम्हार - बिल्ली बोले म्याऊँ)

जहाँ तक सामाजिक मूल्यों का सवाल है यह बाल साहित्य सीधे-सीधे उपदेश देने की

प्रवृत्ति से बचा हुआ है। हाँ, यह अलग बात है कि मूल्य कहानी के ताने-बाने में इस तरह गुँथे हुए हों कि वे कहानी के साथ-साथ स्वयं ही, अनायास तरीके से संप्रेषित हो जाएँ, लेकिन रचनाओं का गहन विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि कोरी उपदेशात्मकता, नैतिक मूल्यों से पोषित रचनाओं को जगह देना इस बाल साहित्य का उद्देश्य नहीं है। स्वत: प्रेषित होने वाले मूल्यों की एक बानगी इस प्रकार है – चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित **'शोभना'** शीर्षक कहानी में यातायात के नियमों का, सड़क पार करने के नियमों का पालन करना जैसे मूल्य दिए गए हैं।

'कितनी प्यारी है यह दुनिया' पशु-पक्षी, पेड़-पौधों के प्रति प्रेम का भाव तो प्रकट करती ही है साथ ही छोटे भाई-बहनों के प्रति भी स्नेह भाव को पोषित करती है। **'तीन मछलियाँ'** शीर्षक कहानी अनायास ही अनेक मूल्यों को संप्रेषित करती है – बड़ी मछली के माध्यम से वह आलस को त्यागने, बीच की और दूसरी मछली के माध्यम से जल्दबाज़ी में काम न करने तथा सबसे छोटी मछली के माध्यम से चुस्ती, फुर्ती, कर्मण्यता, होशियारी सोच-विचारकर काम करने जैसे मूल्यों की चर्चा करती है। इसके अतिरिक्त **'आम की कहानी'** शीर्षक पुस्तक में इस बात को अप्रत्यक्ष रूप से उभारा गया है कि गुलेल का इस्तेमाल पक्षियों को मारने, उन्हें नुकसान पहुँचाने के लिए न करें। **'भोर भई'** में एक व्यवस्थित दिनचर्या में बँधा अनुशासन, स्वच्छता जैसे मूल्य पोषित होते हैं। **'मैं भी...'** शीर्षक कहानी में दूसरों की नासमझी वाला अनुकरण नहीं करना चाहिए जैसे महत्वपूर्ण मूल्य को उभारा गया है। **'हाथी की हिचकी'** शीर्षक कहानी में एक-दूसरे का सहयोग, अहिंसा, शांति, परस्पर भाईचारा, मैत्री, सद्भाव जैसे मूल्य बेहद सुंदर अंदाज में प्रस्तुत किए गए हैं। इसी कहानी **'हाथी की हिचकी'** में केवल दो दृश्य ही इतने सक्षम हैं कि वे पूर्वोक्त समस्त मूल्यों को प्रदर्शित कर सकें। दोनों दृश्यों में शेर, चूहा, ज़ेबरा, सभी मिलजुल कर एक-दूसरे का सहारा लेकर सो रहे हैं। पहले दृश्य में चूहा शेर की पूँछ ओढ़ावन बनाकर बेफ़िक्री से 'मुँह खोलकर' सोता है तो दूसरे दृश्य में यह बेफिक्री और भी नज़र आती है जब चूहा शेर के पैरों और ज़ेबरा शेर की पीठ का सहारा लेकर चैन से सोते हैं। इन दो चित्रों पर बातचीत की जाए तो मूल्यों की दृष्टि से यह कहानी बहुत मूल्यवान सिद्ध हो सकती है।

'लाल पतंग और लालू' शीर्षक कहानी में मानव और पशुओं की समान स्तरीय संवेदना जैसा मूल्य उभरकर आता है। लालू बार-बार पतंग को पकड़ने का प्रयास करता है, लेकिन असफल हो जाता है। उसकी इस संवेदना का सहभागी बनते हुए राजा अपनी ओर से पतंग को पकड़ने का पूरा प्रयास करता है।

जब पतंग नज़दीक आने लगती है तो राजा अपने पैर से उसे चेताने का प्रयास करता है। यह दृश्य भी अत्यंत मार्मिक है। कहानी की दोनों घटनाएँ तदनुभूति, सहायता करना, कोशिश करना, कर्मण्यता आदि मूल्यों को पुष्ट करती है।

बाल साहित्य पर गौर करें तो पहले शब्द तो उसी माटी के बने होने चाहिए जिस माटी के बच्चे खुद हों। फिर हाथ बढ़ाकर बच्चे के ही दिमाग में से मुट्ठीभर शब्द निकाल लीजिए और उनका ही पहले-पहल इस्तेमाल कीजिए। फिर चाहे ये शब्द अच्छे हों या बुरे, उग्र हों या शांत, रंगीन हों या फ़ीके, ताकि प्रारंभ टूटन से न हो, कटाव से न हो।

बच्चों की इन विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए बाल साहित्य लेखन की दिशा में अभी काफ़ी कुछ किया जाना शेष है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए। बड़ी किताबों की ज़रूरत उस समय और भी ज़्यादा महसूस की जाती है जब बच्चों को कोई कहानी सुनानी हो। बड़ी किताब की कहानी में आए चित्रों और उन चित्रों में समाए कहानी के पात्रों, कहानी की घटनाओं से आत्मीय रिश्ता बनाने में मदद सहायक होती है। कोशिश की जाए कि किताबों का आकार इतना हो कि सभी बच्चे एक गोल घेरे में बैठकर चित्रों को भरपूर देख सकें, उन पर चर्चा कर सकें।

बाल साहित्य का बहुसंवेदी होना उसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता हो सकती है। जिससे समावेशी शिक्षा की संकल्पना को साकार किया जा सकेगा। साथ ही बच्चों की चिंतन शक्ति का भी विकास संभव हो सकेगा। यह सत्य ही है कि बाल-काव्य में जो मज़ा है वह हमारे बड़ों की 'मतलबी' दुनिया में नहीं है। अपने अतार्किक और असंतुलित रूप में भी वे हमें प्रिय लगते हैं और हमारे भाव-जगत में गुदगुदी करते हैं। दरअसल हर चीज़ में मतलब ढूँढ़ना, हर चीज़ के मायने तलाश करना हम बड़ों की ही आदत है, बच्चे इससे परे रहते हैं। उनकी अपनी एक अलग दुनिया होती है। एक ऐसी दुनिया जहाँ मतलब बेमतलब हो जाता और बेमतलब भी आनंद की सृष्टि करता है।

इस पूरी चर्चा से बच्चों और बच्चों के साहित्य के बारे में यह समझ बनती है कि **बच्चे बाल साहित्य के रूप में चित्रात्मक और रंगीन पुस्तकों को बेहद पसंद करते हैं। उनकी पसंद के दायरे में पशु-पक्षी, हवा, बादल, पेड़-पौधे, नदी, पहाड़, चाँद, बच्चे आदि सभी कुछ शामिल हैं।** यह बाल साहित्य न केवल तरह-तरह की अवधारणाएँ बनने-बनाने, उन्हें सवंर्द्धित करने में मदद करता है, बल्कि आपसी संवाद के माध्यम से भाषा और मूल्य-विकास को भी पोषित करता है। यह भी समझ बनती है कि बच्चे लयात्मक पाठ्य-वस्तु के प्रति रुचि प्रदर्शित करते हैं। फिर वह चाहे गीतात्मक कहानी हो या तुक, ताल, लय में बँधी कविता। इनमें शब्दों, वाक्यों की लयात्मक और बँधी-बँधायी निश्चित अंतराल की पुनरावृत्ति और भी आकर्षण पैदा करती है। बाल साहित्य हमें वह अवसर देता है कि हम बच्चों के कल्पना संसार में झाँक सकें।

उनके कल्पना संसार में झाँकने भर की देर है- आप स्वयं को रोमांचित महसूस करेंगे क्योंकि बाल मन वयस्क मन की तरह चीज़ों, घटनाओं में हमेशा तर्क, तथ्य और वस्तुनिष्ठता की खोज नहीं करता है। वह तो केवल कल्पना की उड़ान भरना चाहता है- बिना परों के! यही बच्चों की दुनिया है। बच्चों को समझने के लिए उनकी इसी दुनिया का हिस्सा बनना होगा!

❑❑❑

संदर्भ

- कुमार, कृष्ण, 2008, *दीवार का इस्तेमाल और अन्य लेख*, एकलव्य, ई-10, बी.डी.ए. कॉलोनी, शंकर नगर, शिवाजी नगर, भोपाल, मध्यप्रदेश
- पंडित, सुरेश, 2005, हिंदी में बाल साहित्य: वस्तु स्थिति और संभावनाएँ, *शिक्षा-विमर्श*, दिगंतर, टोडी रमजानीपुरा, जगतपुरा, जयपुर
- पराशर, पंकज, 2005, बाल साहित्य : खुद के बहाने एक बहस, *शिक्षा-विमर्श*, दिगंतर, टोडी रमजानीपुरा, जगतपुरा, जयपुर
- पांडे, लता (संपादक), 2008, *पढ़ने की दहलीज पर : पढ़ने से संबंधित लेखों का संकलन*, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली।
- प्रसाद, देवी, 2005, *शिक्षा का वाहन कला*, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नयी दिल्ली।
- मालवीय, मुकेश (अंक 51) तुकबंदियों का कमाल शिक्षण में धमाल, *शैक्षणिक संदर्भ*, एकलव्य, चक्कर रोड मालाखेड़ी, होशंगाबाद

5

बाल साहित्य का शैक्षिक अवदान

रामनिहोर तिवारी*

बच्चों के सर्वांगीण विकास में बाल साहित्य का अहम योगदान है। बाल साहित्य का अपना एक गरिमामयी इतिहास है, परंतु आज बच्चों को सीखने-सिखाने की क्रिया पाठ्यपुस्तकों तक रह गई है, जिससे बच्चों के ज्ञान का दायरा सीमित हो रहा है। यदि हम बच्चों का पूर्ण विकास करना चाहते हैं, तो हमें बाल साहित्य के माध्यम से ज्ञान देना होगा, तभी बच्चों को एक नयी दिशा मिलेगी...

बच्चों में मूल्यों का संवर्द्धन बाल साहित्य द्वारा ही संभव है। हरीशचंद्र नाटक को देख कर ही बालक मोहनदास करमचंद गांधी ने सत्य और अहिंसा को स्वाधीनता आंदोलन का आधार बनाया। बाल साहित्य बच्चों की रुचि को ध्यान में रखकर उसके सर्वांगीण विकास की चिंता करता है, और बच्चे की हित साधना को अपना अभीष्ट मानता है। बाल साहित्य का विश्लेषण करते हुए विजय शंकर मिश्र लिखते हैं– बालक की मनोदशा, उसकी आज़ादी उसकी किलकारी, उसके सपने, उसकी हलचलें सब बाल साहित्य की मूल्यवान पूँजी हैं।

बाल साहित्य के मर्मज्ञ श्री प्रांजलधर के अनुसार– पारदर्शी बालमन, पारदर्शी भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति को बाल साहित्य कहते हैं।

निष्कर्षत: बालमन को केंद्र में रख कर रचा गया साहित्य बाल साहित्य कहलाता है।

समूचे बाल साहित्य का सूत्र रूप में विहंगावलोकन करने से ज्ञात होता है कि बाल साहित्य हमें दो रूपों में उपलब्ध है—

1. मौखिक बाल साहित्य
2. लिखित बाल साहित्य

1. **मौखिक बाल साहित्य**– बाल साहित्य का अलिखित हिस्सा मौखिक बाल साहित्य कहलाता है।कुछ विद्वान दादी-नानी द्वारा सुनाई जाने वाली कहानियों को आदि मौखिक बाल साहित्य निरूपित करते हैं और कुछ विद्वानों के मतानुसार माताओं द्वारा बच्चों को सुलाने के लिए मधुर कंठ से गाई जाने वाली स्नेह-सिक्त लोरियों को

* *सेनानिवृत्त प्राचार्य*, ग्राम-पो. बल्हौड़, वाया मानपुर, जिला-उमरिया, म.प्र. 484665

प्रथम मौखिक बाल साहित्य माना गया है। मौखिक बाल साहित्य वाचिक परंपरा में लोक कथाओं, लोक गीतों, लोरियों और पहेलियों के रूप में पीढ़ियों से हमारे बीच विद्यमान है।

मौखिक बाल साहित्य के अंतर्गत ढेरों बाल लोक गीत हैं, जो बालमन को लुभाने और संवेदना संचरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन दुर्लभ हृदयस्पर्शी लोक गीतों के रचनाकारों को भले आज कोई नहीं जानता, किंतु इनका साहित्यिक योगदान अविस्मरणीय है। उत्तर प्रदेश की 'खगनिया' का नाम भुलाया नहीं जा सकता, जिन्होंने सैकड़ों ज्ञानवर्द्धक पहेलियों की आशु रचना कर मौखिक बाल साहित्य को समृद्ध किया है।

'खगनिया' जैसी अनेक निरक्षर महिलाओं द्वारा रचित दादर, सोहर, बनरा, सोहगवा, गारी जैसे अनेक उत्सव गीतों भाव गीतों तथा कर्णप्रिय लोरियों से बाल साहित्य भरा पड़ा है। पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण के चलते आज लोक गीतों का धीरे-धीरे लोप हो रहा है।

विदुषी 'मृदुला सिन्हा' बालमन को आनंद से आप्लावित करने वाली, सामाजिक चेतना की संवाहक लोरियों के भविष्य की चिन्ता करती हुई लिखती हैं- लोरियों को खो कर हम बहुत कुछ खो रहे हैं।

सच तो यह है कि यदि हमारे बीच से मौखिक बाल साहित्य लुप्त हुआ तो पीढ़ी का भावनात्मक विकास रुक जाएगा।

2. **लिखित बाल साहित्य** - पुस्तकों में लिपिबद्ध बाल साहित्य लिखित बाल साहित्य कहलाता है। यह कविता कहानी, उपन्यास, नाटक और जीवनी के रूप में उपलब्ध है। विजय शंकर मिश्र के अनुसार- बाल साहित्य की लिखित परंपरा में अमीर खुसरो से इसकी शुरूआत मानी जा सकती है। खुसरो द्वारा बच्चों के लिए लिखी गई पहेलियाँ बाल साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इन पहेलियों से जहाँ बच्चों का स्वस्थ मनोरंजन होता था, वहीं नयी-नयी जानकारियाँ सहज ही उपलब्ध हो जाती थीं, हालाँकि आज 'बुझौवल' का अस्तित्व दूरदर्शन ने विलोपित कर दिया है, किंतु इसकी महत्ता नकारी नहीं जा सकती।

बाल साहित्य के विधिवत लेखन का प्रारंभ भारतेंदु युग से होता है। इसी समय **'बाल दर्पण'** और **'बाला बोधिनी'** जैसी महत्वपूर्ण बाल पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारंभ हुआ, जिनसे बाल साहित्य को काफी प्रोत्साहन मिला। भारतेंदु हरीशचंद्र द्वारा लिखित बाल साहित्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसी समय इंग्लैंड के फ्रेडरिक पिंकाट द्वारा हिंदी में बच्चों के लिए चार भागों में लिखी गई **'बालक दीपक'** भी बाल साहित्य की अमूल्य निधि है। बैताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी, पंचतंत्र और हितोपदेश बाल साहित्य के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखने वाली रचनाएँ हैं।

द्विवेदी युग में भी बाल साहित्य पर खूब काम हुआ। महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिली

शरण गुप्त, हरिऔध, कामता प्रसाद गुरू, राम नरेश त्रिपाठी, सुखदेव चौबे, सोहन लाल द्विवेदी, रामेश्वर गुरू आदि रचनाकारों ने बाल साहित्य को दुर्लभ रचनाएँ दीं। इस समय की बाल कविताओं में राष्ट्र प्रेम और राष्ट्रीय भावना का उत्साह देखते बनता है। सोहन लाल द्विवेदी तो बाल रचनाओं के सिद्धहस्त कवि थे। सुभद्रा कुमारी चौहान ने बाल साहित्य को "यह कदंब का पेड़ अगर माँ होता यमुना तीरे" और 'झाँसी की रानी' जैसी अमर कृतियों से उपकृत किया।

हिंदी के श्रेष्ठ कथाकार प्रेमचंद ने बाल साहित्य को अनेक उच्च कोटि की कहानियाँ दीं, जिनमें–'दो बैलों की कथा' 'बड़े भाई साहब' 'गुल्ली-डंडा, 'ईदगाह', 'राम लीला', आदि प्रमुख हैं। प्रेमचंद द्वारा 1936 में लिखा गया 'कुत्ते की कहानी' नामक उपन्यास हिंदी का पहला बाल उपन्यास है। अमृत लाल नागर बाल साहित्य के समर्पित रचनाकार थे, जिन्होंने रोचक और मनभावन बाल कहानियों की रचना की, बाल कविताएँ, बाल साहित्य में बढ़ोतरी की। इनके द्वारा लिखी गई बाल महाभारत अनूठी कृति है जो उनके लेखकीय निपुणता को उजागर करती है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और राष्ट्र कवि दिनकर का नाम बाल साहित्य जगत में आदरणीय है। दिनकर जी का बाल काव्य "सूरज का ब्याह" अत्यंत रोचक और मनभावन रचना है। **'बालक'** पत्रिका के संपादक रामवृक्ष बेनीपुरी ने भी बाल साहित्य पर प्रशंसनीय कार्य किया है। मन्नू भंडारी, निर्मल वर्मा, अज्ञेय, रमेशचंद्र शाह आदि रचनाकार बच्चों की कोमल भावनाओं के पारखी चितेरे हैं, जिन्होंने बालमन की गहराइयों को खँगालने में कामयाबी हासिल की है।

हमारे देश में शिक्षा का आधार मात्र पाठ्यपुस्तकें हैं। आज पाठ्यक्रम की चारदीवारी में परिसीमित ज्ञान को कक्षा में बाँटकर देखा जा रहा है, जिससे बच्चे का ज्ञान विस्तार बाधित हुआ है। सीखने-सिखाने की क्रिया पाठ्यपुस्तक तक सीमित है, जिसका उद्देश्य परीक्षा उत्तीर्ण करना मात्र है। आज भी हमारे कई शिक्षकों के मन से शाहजहाँ की बादशाहत गई नहीं है। अनुशासन के कुशासन में पल रही बाल पीढ़ी के लिए पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों का पढ़ना अघोषित अपराध है। स्कूलों को प्रदत्त बाल साहित्य अलमारियों में कैद कर दिया गया है। परिणामतः चरित्र व सोच गढ़ने में निर्णायक भूमिका अदा करने वाली साहित्यिक रचनाओं से बच्चे अछूते रह जाते हैं। शिक्षाविद् कृष्णकुमार ने अपनी पुस्तक **''बच्चे की भाषा और अध्यापक''** में लिखा है –

"स्कूल में बच्चों की ज़िंदगी को आनंददायक और उपयोगी बनाने के लिए आवश्यक सारी सामग्री दुनिया की किसी एक पाठ्यपुस्तक में नहीं मिल सकती।"

साफ ज़ाहिर है कि बच्चों को विविध विचारधाराओं से अवगत कराने और समय सामयिक जानकारियाँ प्रदान करने के लिए बाल साहित्य की महती भूमिका है।

शैक्षिक उद्देश्यों के अनुरूप स्तरीय और प्रभावी बाल साहित्य लेखन के लिए अग्रलिखित कुछ बिंदुओं पर ध्यान दिया जा सकता है –

- बाल साहित्य लेखन बाल केन्द्रित होना चाहिए।
- बाल साहित्य में प्रयुक्त भाषा सरल, सुबोध और स्तरानुकूल होनी चाहिए।

शा. पूर्व माध्यमिक शाला ताला, जिला उमरिया में बाल साहित्य का अध्ययन करते बच्चे।

- बाल साहित्य बालकल्याण की भावना से उद्‌भूत होना चाहिए।
- बाल साहित्य की रचना समय और समाज की माँग के अनुरूप होनी चाहिए।
- बाल साहित्य बालमन की रुचि को ध्यान में रख कर लिखा जाना चाहिए।
- बाल साहित्य की पुस्तकों को सचित्र और आकर्षक होना अत्यावश्यक है।
- बाल साहित्य लिखने के लिए बाल मनोविज्ञान की समझ ज़रूरी है।
- बाल साहित्य की संवेदना संवाहक के रूप में प्रभावी भूमिका होनी चाहिए।
- उपरोक्त शर्तों की कसौटी पर खरा उतरने वाला बाल साहित्य ही बालोपयोगी हो सकता है।
- पाठ्यपुस्तक की धूरी पर घूमने वाली, परीक्षा उत्तीर्ण करने तक सीमित स्कूली शिक्षा चरित्र गढ़ने में पूरी तरह सक्षम नहीं है, शैक्षिक गुणवत्ता का ग्राफ दिनों दिन घट रहा है। अस्तु बहुमुखी बौद्धिक विकास के लिए पाठ्यपुस्तक के अलावा सहायक सामग्री के रूप में बाल साहित्य की अनिवार्यता और सुलभता समीचीन है। शिक्षा को बाल साहित्य से अलग करके नहीं देखा जाना चाहिए।

बाल साहित्य का अमूल्य योगदान

- बाल साहित्य बच्चों के शब्द भंडार में अभिवृद्धि करता है।
- बच्चों के चरित्र निर्माण में बाल साहित्य का विशिष्ट योगदान है।
- सरल-सुबोध और हृदयस्पर्शी होने के कारण बाल साहित्य बालमन पर असरदार भावनात्मक प्रभाव डालता है।
- बाल साहित्य बच्चों में पुस्तकों के प्रति आकर्षण पैदा कर पुस्तक संस्कृति का विकास करता है।
- बालसाहित्य पाठ्यपुस्तक की बासी जानकारी से ऊबे बच्चों का स्वस्थ मनोरंजन करते हुए बिना किसी दबाव और तनाव के सीखने-सिखाने की क्रिया को सहज बनाता है।

बाल पुस्कालय का प्रबंधन करते बच्चे शा. पूर्व माध्यमिक शाला ताला, जिला उमरिया, मध्यप्रदेश।

- बच्चों को जिज्ञासु बनाने में बाल साहित्य की कारगर भूमिका होती है।
- बाल साहित्य बालमन में राष्ट्रीय भावना का प्रस्फुटन और संवर्द्धन कर मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है।
- बाल साहित्य बच्चों को संस्कारित कर स्वस्थ नागरिकता के गुणों से आप्लावित करता है।
- बाल साहित्य कल्पना शक्ति का विकास कर बच्चों को चिंतनशील बनाता है।
- भाषाई दक्षता विकास में लोरियों की महत्वपूर्ण भूमिका सर्वमान्य है।
- पहेलियाँ बच्चों का ज्ञानवर्द्धन करती हैं।
- लोक गीतों से बच्चे वाणी का अनुशासन सीखते हैं।
- बाल साहित्य कोमल भावनाओं की पुष्टि कर बच्चों को संवेदनशील बनाता है।
- विडंबना है कि हमारे घरों और विद्यालयों में बाल साहित्य के प्रति उदासीनता के चलते ज्ञान की अक्षय-पात्र बाल पुस्तकों का अभाव है। स्तरीय बाल साहित्य के अभाव में मानवोचित भावनाओं का पोषण नहीं हो पाता। संस्कारहीनता मूल्यों को क्षरित कर सामाजिक विद्रूपता और जघन्य आपराधिक वृत्तियों को जन्म देती है।

अस्तु बाल साहित्य के महत्त्व को स्वीकारते हुए अभिभावकों और शिक्षा संस्थाओं को नयी पीढ़ी के सम्यक बौद्धिक विकास के लिए उत्कृष्ट बाल साहित्य की प्रचुर उपलब्धता सुनिश्चित करने की तत्परता आवश्यक है। इस संदर्भ में अग्रांकित कुछ सुझाव दृष्टव्य हैं—

- प्रत्येक विद्यालय में पुस्तकालय कक्ष की व्यवस्था की जाए।
- बच्चों को वितरित की गई पुस्तकों के लेखे-जोखे की जानकारी रखी जाए।
- विद्यालय पर्यवेक्षण के दौरान बाल पुस्तकालय की पंजिका का अवलोकन अनिवार्य रूप से किया जाए, ताकि शिक्षकों पर पुस्तक वितरण का दबाव बन सके।
- बाल पुस्तकालयों के लिए क्रय की जाने वाली पुस्तकों का चयन शिक्षाविदों के परामर्श से किया जाए ताकि, बच्चों को उनकी रुचि के अनुसार पुस्तकें उपलब्ध हो सकें।
- बाल पुस्तकालयों में बाल पत्रिकाओं की नियमित मासिक उपलब्धता सुनिश्चित की जाए।
- सुंदर रंगीन चित्रों और कार्टून से भरपूर बाल पत्रिकाएँ बच्चों को आकर्षित करती हैं।
- राज्य शिक्षा केंद्र द्वारा प्रकाशित ''गुल्लक'' बाल पत्रिका का प्रकाशन बाल हित में था। पत्रिका बाल साहित्य के मापदंडों के अनुरूप थी, जिसे बच्चे बड़े चाव से पढ़ते थे। इस महत्वपूर्ण पत्रिका का प्रकाशन पुनः प्रारंभ किया जाना बच्चों के हित में है।
- शासन द्वारा अधिक से अधिक बाल पत्रिकाओं को प्रोत्साहित किया जाए, ताकि स्तरीय बाल पत्रिकाएँ बच्चों तक पहुँच सकें।
- इससे बच्चों में पुस्तक संस्कृति का विकास हो सकेगा।

- प्रत्येक जिले की भौगोलिक एवं ऐतिहासिक जानकारियों को समेटते हुए मासिक बाल पत्रिका के प्रकाशन की व्यवस्था की जाए, जिसमें स्थानीय बाल साहित्यकारों और शिक्षकों की रचनाओं को वरीयता के साथ प्रकाशित किया जाए। पत्रिका में कुछ पृष्ठ बच्चों की रचनाओं के लिए सुरक्षित रखें। ऐसा करने से शिक्षकों में लेखन के प्रति रुझान और बच्चों में पत्रिका के प्रति लगाव पैदा होगा। इतना ही नहीं पत्रिका के माध्यम से बच्चे अपने परिवेश घर-गाँव और अपने पूर्वजों के गौरवशाली अतीत से परिचित हो सकेंगे।
- स्कूलों द्वारा उपलब्ध करायी गई बालोपयोगी पुस्तकें अधिकांश विद्यालयों में गुमने के डर से अलमारियों में बंद पड़ी हैं, बहुत थोड़े विद्यालय हैं जहाँ पुस्तकें बच्चों को पढ़ने के लिए दी जा रही हैं।
- इस संदर्भ में मोहम्मद नसीर अंसारी, प्रधानाध्यापक, प्रा.शा. ताला जिला-उमरिया का नाम उल्लेखनीय है, जिनकी संवेदनशील सक्रियता से विद्यालय में "ओपन लाइब्रेरी" की व्यवस्था की गई है। समूची बाल-पुस्तकें बच्चों की पहुँच में रखी गई हैं, जिनका उपयोग भयमुक्त वातावरण में बच्चे अपनी इच्छानुसार करते हैं। अनुकरणीय बात तो यह है कि पुस्तकों का वितरण और साधारण बच्चे स्वयं करते हैं। इस व्यवस्था का अनुसरण अन्य विद्यालयों में भी सुनिश्चित किया जाए।
- बाल साहित्य के प्रति संवेदनशील शिक्षकों को चिन्हित कर पुरस्कृत किया जाए, ताकि बाल पुस्तकालय की लाभकारी योजना के सफल क्रियान्वयन को प्रोत्साहन मिले।

सर्वाधिक बाल पुस्तकों का अध्ययन करने वाले छात्र को शाला के वार्षिकोत्सव में सम्मानित किया जाए। इन सुझावों को दृष्टिगत रखते हुए बाल साहित्य का चयन और इस्तेमाल किया जाए तो नि:संदेह बच्चों को स्थायी पाठक बनाने की ओर अग्रसर किया जा सकता है।

❑❑❑

6

शाला में बाल साहित्य का उपयोग

*भगवती प्रसाद गेहलोत**

बाल साहित्य नन्हे पाठकों के ज्ञान क्षेत्र में विस्तार का एक अच्छा माध्यम है, इससे बच्चों को नित नयी-नयी जानकारियाँ मिलती हैं और उनकी सूझ-बूझ में वृद्धि होती है। जब बाल साहित्य इतना उपयोगी है, तो अध्यापक एवं स्कूल प्रशासन को भी इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि कैसे शाला में बच्चों की रुचि को ध्यान में रखते हुए बाल साहित्य का उपयोग करें, जिससे बच्चे किताबों से अधिक से अधिक सूचना ग्रहण कर उसका वास्तविक जिंदगी में उपयोग करें। जानने के लिए पढ़िए यह लेख...

प्रारंभिक शिक्षा में सीखने के प्रति बच्चे में रुचि जाग्रत करने के लिए कक्षा में बाल साहित्य के उपयोग का महत्वपूर्ण योगदान होता है। शाला में आने, कक्षा-कक्ष में बैठने, स्वतंत्र रूप से पढ़ने, दोस्तों से चर्चा करने, दोस्तों के बीच बैठकर बाल साहित्य में से कुछ बताने, आपस में पूछकर उठी हुई समस्या का समाधान करने जैसी दक्षता का विकास बाल साहित्य के उपयोग से सरलता से किया जा सकता है। बाल साहित्य बाल केंद्रित शिक्षण की भूमिका अदा कर सकता है। यदि शिक्षक नित-नवीन रोचक बाल साहित्य कक्षा के कोने में रखते रहें तो बाल साहित्य स्व-अधिगम एवं आंगिक हाव-भाव से युक्त अभिव्यक्ति दक्षता का विकास करने में स्वयमेव उपयोगी है।

शाला में बाल साहित्य के स्थान की व्यवस्था

शाला में इसकी व्यवस्था निम्न प्रकार से की जा सकती है-

1. **बाल पुस्तकालय कोना**-कक्षा-कक्ष के एक कोने में दीवार में छात्रों की पहुँच की ऊँचाई के अनुसार फर्सियाँ लगाई जा सकती हैं (कम से कम दो) जिस पर बाल साहित्य विभाजित कर रखा जाता रहे, जिसे हम बाल पुस्तकालय कॉर्नर का नाम दे सकते हैं।
2. **भित्ती पुस्तकालय**-कक्षा-कक्ष की दीवार में कम-से-कम पाँच या सात फिट लंबी सुतली या प्लास्टिक की पतली रस्सी दो खूँटियों के सिरे पर बाँधकर बाल साहित्य

* *व्याख्याता*, डायट मंदसौर, जी-3 बी.टी.आय कालोनी, मंदसौर, मध्यप्रदेश-458801

को टाँकने की व्यवस्था की जा सकती है, ताकि बच्चे जब भी अवसर मिले, स्वतंत्र रूप से उसका उपयोग कर सकें।

3. **अलमारी या रैक** – प्रधानाध्यापक-सह-शिक्षक बैठक कक्ष में खुली अलमारी रख अथवा रैक को रख उसमें बाल साहित्य संबंधी पुस्तकों का खंड और बाल साहित्य पत्र पत्रिका खंड बनाकर या निर्धारित कर रखा जा सकता है।
4. **समुदाय का सहयोग** – संसाधनों की व्यवस्था के लिए शाला में बजट या राशि उपलब्ध न हो तो शाला प्रबंधन समिति को अथवा समाज समुदाय के सहयोगी प्रवृत्ति वाले लोगों को चिह्नांकित कर उन्हें प्रेरित कर अलमारी या रैक के लिए सहयोग लिया जा सकता है। संसाधन भंडार पत्रिका में उल्लेख के साथ दर्ज किए जाएँ।

शाला में बाल साहित्य का प्रबंध

शाला में बाल साहित्य का प्रबंध इस प्रकार किया जा सकता है-

1. शासन की ओर से प्रदाय होने वाली पुस्तकों में से बाल साहित्य को अलग छाँटकर बच्चों के लिए उपलब्धता सुनिश्चित करें।
2. विभिन्न प्रकाशनों से निकलने वाली बाल पत्रिकाओं को खरीद कर या शाला को वार्षिक सदस्य बनाकर व्यवस्था की जा सकती है जिसमें वैज्ञानिक मनोरंजन के साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण व नैतिक मूल्य का विकास करने वाली पत्रिकाएँ भी हों।
3. विभिन्न समाचार पत्रों में साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक निकलने वाली बाल पत्रिका या साहित्य को इकट्ठा करते रहकर छात्रों के लिए उपलब्ध कराया जा सकता है। बच्चों के घर आने वाले समाचार पत्र के साथ आने वाले बाल साहित्य को अभिभावकों से पूछकर मँगवाते रहा जा सकता है।
4. शिक्षक खुद भी अपने परिचितों से या अपने यहाँ आने वाले समाचार पत्रों के बाल साहित्य परिशिष्ट से इस प्रकार का साहित्य संग्रह कर सकता है। मँगाने वाला पढ़ ले या उपयोग कर ले, उसके दो-तीन दिन बाद तो वह दे ही सकता है।

कुल मिलाकर बात यही है कि शिक्षक मन से सुविधानुसार इसे एकत्रित कर सकता है। कक्षा में सुतली पर टाँगता रहे या कोने में रखता रहे। नया साहित्य मिलने पर पुराना हटा दे, नया रखता रहे, तभी रुचिकर शिक्षण में छात्रों का ध्यान खींचने में सफल होगा। आवश्यकता होने पर कंटिजेंसी राशि का कुछ उपयोग इसमें किया जा सकता है।

बाल साहित्य का उपयोग कैसे करें —

प्रतिवर्ष नवीन सत्र प्रारंभ होने व प्रवेश प्रक्रिया निश्चित हो जाने के बाद प्रार्थना के समय बैठाकर या प्रथम बालसभा में सभी छात्रों को बाल पुस्तकालय उपयोग करने का मार्गदर्शन करें, उन्हें समझाएँ यथा सभी बच्चों के लिए अपनी-अपनी कक्षा में कोर्स की किताब के अलावा अच्छी-अच्छी किताबें, नयी-नयी पत्रिकाएँ रखी रहेंगी या डोरी पर टँगी रहेंगी।

आप जब भी फुरसत में रहें या आपके शिक्षक कहें तब उन्हें भी पढ़ सकते हैं। जो कहानी या बात आपको अच्छी लगे बालसभा में भी सुना सकते हैं या अपनी कक्षा में भी सुना सकते हैं। उसमें कहीं बिंदु जोड़कर चित्र बनाने का हो या रेखा खींचकर चित्र बनाने का हो, रास्ता ढूँढ़ने जैसी पहेली हो तो पेंसिल का उपयोग कर आप उस काम को कर सकते हैं। इसमें रबर का उपयोग भी आप कर सकते हैं। चित्रों में अंतर ढूँढो, गलती ढूँढो, शब्दार्थ बताओ, सही हल खोजो, पहेली पूर्ति करो आदि कार्य कर सकते हो।

प्रार्थना के समय प्रतिदिन जिस छात्र-छात्रा का क्रम आए वह बाल साहित्य में से पढ़ी विषयवस्तु प्रतिदिन बारी-बारी से सुनाएगा। यदि याद न रहे तो पत्रिका या पुस्तक में से देखकर भी सुना सकते हैं। इसमें कहानी, कविता, विज्ञान के अविष्कार, बोधकथा, सूक्तियाँ, शब्दार्थ, प्रश्नोत्तर आदि हो सकते हैं।

पुस्तक/पत्र-पत्रिका को व्यवस्थित तरीके से उतारें और वहाँ रखे रजिस्टर में नाम लिख सकें तो लिख दें कि कौन-सी पत्रिका ली या नहीं फिर अपने दोस्त से नाम लिखने के लिए कह दें। उसे जब रखना हो तो व्यवस्थित रखें, इस प्रकार से शिक्षक छात्रों को मार्गदर्शन दे सकते हैं।

बाल साहित्य के उपयोग के संबंध में शिक्षक की भूमिका

1. बाल साहित्य कक्षा में रखना सुनिश्चित करना, बाल साहित्य जुटाना, उपयोग के लिए निर्देश देना, उपयोग का अभिलेख रखना, संभव हो तो एक पंजिका जिसमें क्रमाँक, छात्र का नाम, दिनाँक व पत्रिका का नाम व वापस रखने का दिनाँक अंकित हो, रखी जा सकती है। कक्षा प्रतिनिधि या समिति बनाकर बारी-बारी से छात्रों को साप्ताहिक काम सौंपा जा सकता है। पंजिका में नाम लिखने के लिए छात्रों को समझा दें।
2. बाल साहित्य का उपयोग करने वाले/ उपयोग कर बताने वाले छात्रों को शिक्षक शाबाशी दें, उनकी पीठ थपथपाएँ, सबके सामने उनकी प्रशंसा करें।
3. शिक्षक समय-समय पर अवलोकन भी करता रहे कि किस प्रकार के बाल साहित्य का बच्चे ज्यादा उपयोग कर रहे हैं।
4. बाल साहित्य में दी गई गतिविधि का उपयोग शिक्षक खेल के कालखंड में कर सकते हैं।
5. बाल साहित्य पढ़ने वाले छात्रों से चर्चा के दौरान छात्र में पूर्व में विद्यमान (प्रवेशीय दक्षता/पूर्व ज्ञान) दक्षताओं को ध्यान में रखकर पढ़ी गई कहानी या विषय वस्तु से हिंदी, गणित, पर्यावरण, अंग्रेजी, सामाजिक अध्ययन, सामान्य ज्ञान आदि के सामान्य प्रश्नों के उत्तर जानने का प्रयत्न करें। किसी भी विषयवस्तु से उपरोक्त विषयों से संबंधित सरल प्रश्न आसानी से बनाए जा सकते हैं। इसके लिए ज़रूरी है कि शिक्षक भी सरसरी तौर पर दिए जाने वाले बाल साहित्य पर निगाह दौड़ा लें।
6. प्रार्थना के समय प्रतिदिन पाँच मिनट का समय अभिव्यक्ति कौशल के लिए

निर्धारित करें तथा शिक्षक उपस्थित पंजिका से कक्षावार बारी-बारी से प्रतिदिन दो छात्र-छात्रा का क्रम इस बात के लिए निर्धारित करें कि आगामी दिवस पर कौन अभिव्यक्त करेगा ताकि छात्र पढ़े गए बाल साहित्य को नि:संकोच सुना सके/या पढ़कर बता सके। जिस दिन कोई तैयारी करके न सुना सके उस दिन उदाहरण के तौर पर शिक्षक सुनाए कि उसने यह पढ़ा था।

7. शिक्षक पुस्तकालय कोने में स्लेट-पेंसिल, कलर पेंसिल, छोटी-बड़ी स्केल, कोरे कागज आदि रखे तथा उनका उपयोग कब कैसे करना है यह समझा दे, ताकि आवश्यकता पड़ने पर छात्र उसका उपयोग कर सकें।
8. शिक्षक विभिन्न विषयों के निर्धारित अधिगम क्षेत्रों/दक्षताओं का अध्ययन कर बाल साहित्य से समन्वय बैठाकर स्व-अधिगम व प्रश्न चर्चा के माध्यम से शिक्षण को प्राथमिकता दे तो पाठ्यक्रम के बहुत सारे अंशों की पूर्ति बाल साहित्य के स्वतंत्र पठन से हो सकती है, ज़रूरत है नज़रिया बनाने की।
9. विभिन्न विषयों की पाठ्यवस्तु के शिक्षण के पश्चात् अनुप्रयोग के लिए शिक्षक बाल साहित्य का भरपूर उपयोग करवा सकता है।

नित नयी जानकारी शीघ्र प्राप्त करने की सुविधा वाले इस वैज्ञानिक युग में छात्र भी जिज्ञासु रहता है। पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु अच्छी होने के बावजूद छात्र नयी लायी गई, टाँगी गई बाल पत्रिका को देखने के लिए ज़्यादा उत्साहित रहते हैं। पाठ्यपुस्तक तो उसके पास वर्ष भर रखी रहने व पढ़ी जाने वाली होती है। उसे वह शिक्षक द्वारा पढ़ाई जाने वाली-सिखाई जाने वाली प्रक्रिया के रूप में देखता है तथा पढ़ाने-पढ़ने की बँधी बँधाई मानसिकता के रूप में लेता है। इसलिए हर सप्ताह कोई पत्रिका टँगी देखता है तो उसमें स्वयं रुचि लेता है। अत: यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि शिक्षण में बाल साहित्य का उपयोग कर शिक्षण को रुचिकारक, गतिविधि केन्द्रित, आनंददायी, आकर्षक बनाकर लक्षित दक्षताओं की पूर्ति करने में सहयोगी बनाया जा सकता है। इसके माध्यम से बच्चों में शैक्षणिक दृष्टिकोण के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करवाई जा सकती है। ज़रूरत है सच्चे मन से बाल साहित्य के उपयोग की।

❑❑❑

7

बाल साहित्य और भाषा शिक्षण

मनोहर चमोली 'मनु'*

कविता बच्चों को आनंदित करती है। बच्चे विद्यालय में आने से पहले ही अनेक गीत और कविताएँ अनायास ही सीख चुके होते हैं, लेकिन विद्यालय आने के बाद धीरे-धीरे कविता में बच्चों की रुचि खत्म होने लगती है। इसका कारण है शिक्षक द्वारा कविता को सही ढंग से प्रस्तुत न करना। कविता पर बातचीत द्वारा कविता बच्चों के लिए सरस भी बनती है और बच्चों में अनेक भाषायी कौशलों का विकास होता चलता है। कविताओं पर बातचीत कैसे की जाए? जानने के लिए पढ़िए यह लेख–

बच्चों में विभिन्न भाषायी कौशलों के विकास के लिए सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के दौरान बाल साहित्य का उपयोग किया जा सकता है। यह भाषा का शिक्षक जानता है और अक्सर वह अपनी कक्षा में पाठ्यपुस्तक से इतर के बाल साहित्य की चर्चा भी करता है। कविताएँ लय और तुकबंदी के कारण सहज ही बच्चों को अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं। कक्षा में बच्चों को कविताएँ सुनाने के बाद उन पर बातचीत की जाए तो बच्चों की कविता में रुचि को बढ़ाया जा सकता है। मैंने कक्षा सात और आठ के बच्चों को कुछ बाल कविताएँ पढ़ने को दीं। वह भी तब जब वह मुझे फुरसत में नज़र आए। मैंने यह ध्यान रखा कि एक बार में केवल एक ही कविता पढ़ने को दी जाए। बच्चों ने मन लगाकर उन कविताओं को पढ़ा ही नहीं बल्कि गुनगुनाया भी। कुछ कविताओं को पढ़कर वे मुस्कुराए भी। बच्चों ने कुछ कविताओं को पढ़कर मेरे साथ दिलचस्प बातें साझा कीं। इन कविताओं को पढ़ने-सुनने के बाद बच्चों द्वारा की गई बातों को यहाँ बच्चों के नज़रिए से ही प्रस्तुत किया जा रहा है। कविता की प्रासंगिकता और भाव अपनी जगह महत्वपूर्ण है। पाठक इन कविताओं पर बच्चों द्वारा की गई टिप्पणियों पर विचार करेंगे। मैं यहाँ यह स्पष्ट करना चाहूँगा कि इस आलेख का आशय यहाँ दी गई कविताओं की समीक्षा नहीं है। एक कविता है–

* *भाषा अध्यापक*, राजकीय हाई स्कूल भिताईं पौड़ी, पौड़ी गढ़वाल, 246001 उत्तराखंड

हुआ सवेरा जागो भैया,
खड़ी पुकारे प्यारी मैया।
हुआ उजाला छिप गए तारे,
उठो मेरे नयनों के तारे।
झटपट उठकर मुँह धुलवा लो,
आँखों में काजल डलवा लो।

कवि— श्रीधर पाठक

बच्चों ने पूरी कविता एक-दूसरे से बार-बार लेकर पढ़ी। फिर मेरी ओर देखने लगे। मैंने कहा, "भैया अब इस कविता के बारे में बात करते हैं। जिसके मन में जो आ रहा है, वह वो बोल सकता है।"

मेरे कहने की देर थी कि एक बच्ची ने कहा, "भैया लोग ही देर में उठते हैं? हम लड़कियाँ तो जल्दी उठ जाती हैं। लेकिन पापा खुद भी देर से उठते हैं और भैया को कुछ नहीं कहते। हमें दिन छिपने से पहले घर में आ जाना होता है, लेकिन भैया लोग अँधेरा होने के बाद भी यहाँ-वहाँ खेलते रहते हैं।"

बच्ची की बात सुनकर मैं हैरान हो गया। मैं तो सोच रहा था कि बच्चे कविता की व्याख्या करेंगे। ये बताएँगे कि इसमें यह कहा गया है, वो कहा गया है। एक बच्चे ने धीरे से कहा, "घर में माँ को ही ज्यादा काम करना पड़ता है। पिताजी जिस दिन घर में रहते हैं, उस दिन भी कुछ नहीं करते। कभी कहीं चले जाते हैं, तो कभी कहीं। कभी उनसे मिलने कोई आ जाता है, तो कभी वे कहीं बैठने चले जाते हैं। खाना खाने के लिए हमें बार-बार उन्हें खोजना पड़ता है।"

बच्चे की बात सुनकर मैं मुश्किल से अपनी हँसी रोक पाया। मैंने कहा, "किसी और को कुछ कहना है?"

एक बच्ची उठकर कहने लगी, "हम तो अपने आप ही अपना मुँह धो लेते हैं। मेरी माँ तो कहती हैं कि काजल नहीं लगाना चाहिए। आँखों में दवाई भी सोच-समझ कर लगानी चाहिए।" उस लड़की की बात सुनकर एक लड़का तपाक से बोला, "लड़कियों को काजल लगाना चाहिए।"

एक बच्ची ने ब्लैकबोर्ड पर लिखी कविता को घूरा और फिर पूछा, "नयन का तारा मतलब?"

मैं चुप रहा और मैंने सभी बच्चों को देखा। एक बच्चा बोला, "यानि घर के बच्चे उठ जाओ।"

मैंने पूछा, "घर के बच्चे मतलब सभी न?" एक बच्ची ने कहा-"नहीं। मतलब ये लड़कों के लिए कहा गया है।"

"क्यों? नयन के तारे लड़के ही होते हैं। लड़कियाँ नहीं?" बच्ची का जवाब सुनने के बाद मैंने पूछा कक्षा की लड़कियों ने सिर झुका लिया और लड़के तनकर खड़े हो गए। मैंने बात बदल दी और कहा, 'अच्छा अब इस कविता को पढ़कर कुछ सवाल बनाओ।'

बच्चे सोच में पड़ गए और कॉपियों पर कुछ लिखने लगे। दूसरे दिन मैंने उनके सवालों को देखा। कुछ सवाल मुझे महत्वपूर्ण लगे थे। जो ये थे-

- हम सोते ही क्यों हैं?
- माँ ही बच्चों का ध्यान क्यों रखती है, पिता क्यों नहीं?
- बच्चों को ही जल्दी उठने की सलाह क्यों दी जाती है?

दो दिन के उपरांत मैंने बच्चों को दूसरी कविता पढ़ने को दी—

यदि होता किन्नर नरेश मैं, राजमहल में रहता,
सोने का सिंहासन होता, सिर पर मुकुट चमकता।
बंदी जन गुण गाते रहते, दरवाजे पर मेरे,
प्रतिदिन नौबत बजती रहती, संध्या और सवेरे।
मेरे वन में सिंह घूमते, मोर नाचते आंगन,
मेरे बागों में कोयलिया बरसाती मधु रस-कण।

कवि – द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी

बच्चों ने बड़े उल्लास और आनंद के साथ कविता पढ़ी। उनकी आँखों में मुझे अजीब सी चमक दिखाई दी। मुझे लगा कि यह कविता बच्चों को बेहद पसंद आई है।

मैंने बच्चों से कहा, "इस कविता के बारे में सोचो। खूब सोचो। सोचकर बताओ। अब मैं यह नहीं कहूँगा कि क्या बताना है।"

बहुत देर कक्षा में सन्नाटा छाया रहा। बच्चों ने बारी-बारी से फिर कविता को पढ़ा। एक बच्चे ने कहा, "सोना तो बहुत महँगा है।"

दूसरा बोला, "चुप! ये पुराने ज़माने की कविता है। तब सोने के मकान होते थे। राजा अब कहाँ हैं?''

एक बच्ची ने कहा, "अब तो बाघ हमारे घरों में घुस रहे हैं। हमारे जानवरों को खा रहे हैं।"

एक बच्चे ने मुझसे कहा, "आपने तो कहा था कि मादा कोयल नहीं गाती। नर कोयल गाता है।"

मैंने 'हाँ' में सिर हिलाया। फिर कहा कि अब इस कविता से कुछ सवाल बनाओ। मध्यांतर के बाद मैंने बच्चों के बनाए सवाल देखे। कुछ सवाल ये थे-

- राजा ही सिर पर मुकुट क्यों पहनते थे?
- बंदी से चक्की पिसाना क्या सही है?
- राजा-रानी यदि न्याय करते थे तो वे आज भी जिंदा क्यों नहीं रहे?

बाबा आज देल छे आए,
चिज्जी-पिज्जी कुछ ना लाए।
बाबा, क्यों नहीं चिज्जी लाए,
इतनी देली छे क्यों आए?
काँ है मेला बला खिलौना,
कलाकंद लड्डू का दोना।

कवि – श्रीधर पाठक

यह कविता बच्चों ने बार-बार पढ़ी। कक्षा पाँच के बच्चों को यह कविता अधिक पसंद आई। मैंने फिर वही चर्चा की। पूछा, ''चलिए। अब इस कविता पर बातचीत करते हैं।'' एक बच्ची ने कहा, ''ये कौन से वाले बाबा हैं?'' एक बच्चे ने कहा, ''मतलब?'' वही एक बच्ची बोली, ''मतलब ये कि साधू बाबा या भोले बाबा।'' कक्षा के अन्य बच्चे हँसने लगे। एक बच्ची मेरी ओर देखते हुए बोली, ''अरे बाबा। ये बाबा यानि पापा हैं। कोई छोटा बच्चा अपने पापा से पूछ रहा है।'' मैंने कहा, ''ये कोई लड़की यानी बच्ची भी तो हो सकती है।'' सबने सिर हिलाया।

मैंने फिर कहा, ''अब बारी है इस कविता से सवाल बनाने की। चलो हो जाओ शुरू।'' यह कह कर मैंने उन्हें स्वतंत्र छोड़ दिया। बच्चों

ने सामान्य से प्रश्न बनाए, लेकिन कक्षा आठ के बच्चों के कुछ प्रश्न चौंकाने वाले थे। जो कि निम्न हैं—

- घर के बड़े देर से ही क्यों आते हैं?
- खिलौनों से अधिक बच्चों को पढ़ाई के लिए ही क्यों कहा जाता है?
- हम बच्चों के खेलने का सही समय क्या है?
- बच्चों को ज़बरदस्ती दूध पीने के लिए क्यों कहा जाता है?

उठो लाल अब आँखें खोलो,
पानी लाई हूँ मुँह धो लो।
बीती रात कमल-दल फूले,
उनके ऊपर भौंरे झूले।
चिड़िया चहक उठी पेड़ों पर,
बहने लगी हवा अति सुंदर।

कवि – अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

यह कविता बच्चों ने लय के साथ पढ़ी। बार-बार पढ़ी। कविता पढ़ने के बाद बच्चों की बातचीत बड़ी दिलचस्प थी। एक बच्चे ने कहा, "ये बच्चों को ही बार-बार जगाया क्यों जाता है। जिसे देखो वह यही कहता है कि उठो। जागो। देर तक मत सोओ।" एक बच्चे ने कहा, "वैसे फूल तोड़ना अच्छी बात नहीं है। अब तो चिड़िया दाना खाने भी नहीं आतीं।" दूसरे बच्चे ने कहा, "हमारे घरों में रंग-बिरंगे फूल तो हैं, लेकिन तितलियाँ फिर भी नहीं आतीं। पता है मेढ़क तो कब से नहीं देखे मैंने।" मैंने उनकी बातचीत में कोई बाधा नहीं डाली और कक्षा से दूसरी कक्षा में चला गया। कक्षा आठ के बच्चों ने कविता तो पढ़ी, लेकिन कोई विशेष बातचीत नहीं की। कविता से सवाल कुछ हट कर आए। कुछ सवाल दिए जा रहे हैं—

- कविता में लड़कियाँ ज़्यादा क्यों नहीं होतीं? लड़के ही क्यों?
- घर में बच्चों की देख-रेख मर्द क्यों नहीं कर सकते?
- वृक्षारोपण में अच्छे पौधों को उखाड़कर नयी जगह क्यों लगाया जाता है, जबकि वे सूख जाते हैं?
- भौंरा तितली की तरह सुंदर क्यों नहीं होता?

विनती सुन लो हे भगवान,
हम सब बच्चे हैं नादान।
विद्या-बुद्धि नहीं कुछ पास,
हमें बना लो अपना दास।
बुरे काम से हमें बचाना,
खूब पढ़ाना खूब लिखाना।
हमें सहारा देते रहना,
खबर हमारी लेते रहना।
तुमको शीश नवाते हैं हम,
विद्या पढ़ने जाते हैं हम।

कवि – मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी'

यह कविता जब मैंने बच्चों को पढ़ने के लिए दी तो मुझे लगा कि बच्चे इसे पढ़ने में दिलचस्पी नहीं लेंगे, लेकिन बच्चों ने इसे बार-बार पढ़ा। लय और सुर के साथ भी पढ़ा। कुल मिलाकर इस कविता में संगीतात्मकता का पुट ज़्यादा था। यह बच्चों को याद भी हो गई। अगले दिन मैंने कहा, "विनती सुन लो हे भगवान वाली कविता पर बात करते हैं।"

एक बच्ची ने कहा, "सब कुछ अच्छा है, लेकिन दास बनाने वाली बात ठीक नहीं लगी मुझे।"

थोड़ी देर कक्षा में शांति छा गई। दूसरी बालिका बोली, ''लेकिन यह ज़रूरी नहीं कि बड़े नादान न हों। और नादानी सिर्फ बच्चे ही नहीं करते।''

एक बच्चा जो अक्सर चुप रहता है। वह बोला, ''पढ़ना-लिखना मन से होता है। इसमें कोई ज़बरदस्ती नहीं होनी चाहिए।''

मैंने कहा, "चलिए। एक बार फिर से इस कविता को पढ़िए और कुछ हट कर सवाल बनाइए।"

दो दिन बाद मैंने उन सवालों पर गौर किया। कुछ सवाल ये थे-

- बच्चों की विनती कोई क्यों नहीं सुनता?
- भगवान हमें अपना दास क्यों बनाना चाहेंगे?
- यदि विद्या भगवान देता है तो स्कूल ही क्यों खोले गए हैं?

❑❑❑

क्यों दूर हैं बच्चे किताबों से

लता पाण्डे*

बच्चों में किताबें पढ़ने की नैसर्गिक ललक होती है। लेकिन न तो हमारे विद्यालय और न ही हमारे पुस्तकालय बच्चों में निहित इस नैसर्गिक ललक को पहचानते हैं और उसे बढ़ावा देने के अवसर देते हैं। बच्चों के लिए पुस्तकालय में बाल-कोना हो तो बच्चे बड़े ही चाव से किताबें पढ़ते हैं। ऐसा ही एक अनुभव यहाँ दिया जा रहा है—

पुस्तकों के स्रोत हैं - पुस्तकालय और पुस्तकालय का ज़िक्र आते ही मानस-पटल पर जो तस्वीर उभर कर आती है, वह है बड़ी-बड़ी बंद अलमारियों में रखी किताबें, शांत वातावरण, बड़ी-बड़ी मेज़ों पर फैले अखबार, पत्र-पत्रिकाएँ, सिर नीचे किए चुपचाप बैठे किताबें पढ़ते लोग, किताबें लेने और वापिस करने के लिए बने काउंटर पर बैठा व्यक्ति और पुस्तकालय की संपूर्ण व्यवस्था को देखने के लिए एक ओर रखी मेज कुर्सी पर या कोने में बने कक्ष में विराजमान लाइब्रेरियन। इनमें से लगभग नब्बे प्रतिशत पुस्तकालयों में बच्चों के लिए तो कुछ होता ही नहीं है। अगर किसी पुस्तकालय में बच्चों के लिए किताबें होती भी हैं तो उनमें से अधिकांश में ऐसा कुछ नहीं होता है जो बच्चों को अपनी ओर आकर्षित करे। किताबें भी अलमारियों में इस तरह से कैद होती है कि बच्चे स्वयं उन्हें छूकर, स्वयं उलट-पलटकर नहीं निकाल पाते हैं। जब तक नन्हा पाठक स्वयं किताब के पन्ने नहीं पलटेगा, चित्रों का आनंद नहीं उठाएगा, तब तक अपनी पसंद की किताब कैसे चुन सकता है? अपनी मनपसंद किताब पढ़े बिना बच्चे का किताब से नाता बन ही नहीं सकता।

बच्चों और किताबों के बीच दोस्ती का रिश्ता देखा स्वीडन की एक चिल्ड्रन पब्लिक लाइब्रेरी में। नंवबर 2007 में स्वीडन प्रवास के दौरान स्टॉकहोम में चिल्ड्रन पब्लिक लाइब्रेरी जाने का सुयोग मिला। लाइब्रेरी में पहुँचते ही देखा कि दो शिक्षकों के साथ कुछ बच्चे

* *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली-110016

लाइब्रेरी में प्रवेश कर रहे हैं। हमने भी बच्चों के साथ लाइब्रेरी में प्रवेश किया। लाइब्रेरी में चारों ओर रंग-बिरंगी किताबों से सजे सुंदर डिज़ाइन के छोटे-छोटे खूबसूरत रैक थे। कुछ बाक्सनुमा रैक भी थे, जिनमें किताबें रखी थीं। कक्ष में घुसते ही बच्चे किताबों की ओर लपके। वे किताबें उठाते, पन्ने उलटते-पलटते, चित्र निहारते और किताब मन को भाती तो उसे अपने नन्हे हाथों में थाम पास रखी कुर्सी या बेंच पर बैठ जाते। एक बच्ची बड़े मनोयोग से बड़ी-सी कहानी की किताब देख रही थी, तभी एक बच्चा आया और उसके साथ बैठ गया। दोनों मिलकर किताब का आनंद लेने लगे। एक कोने में रखे रैक से एक नन्हा बच्चा मोटी-सी किताब निकालने की कोशिश कर रहा था।

उस बच्चे को किताब निकालने में परेशानी होती देख साथ आई शिक्षिका पास आईं। हमें लगा कि वे बच्चे को इतनी मोटी किताब निकालने से रोकेंगी। पर हमारी सोच के विपरीत उन्होंने रैक से किताब निकालने में बच्चे की मदद की। किताब निकालकर पास की मेज पर रख दी। बच्चे के चेहरे पर किताब मिल जाने की खुशी स्पष्ट नज़र आ रही थी। बच्चा लपककर कुर्सी पर बैठ गया और लगा किताब को देखने। उस मोटी-सी किताब का आवरण पृष्ठ बेहद आकर्षक था, शायद इसलिए बच्चा उस किताब की ओर आकर्षित हुआ था। वह किताब पशु-पक्षियों से संबंधित जानकारी पर आधारित थी। बच्चा काफी देर तक किताब में बने विभिन्न पशु-पक्षियों के चित्रों का आनंद लेता रहा।

इस कक्ष के अंदर एक ओर कक्ष था, जहाँ बच्चे आ-जा रहे थे। हम भी वहाँ गए। दूसरे कक्ष में प्रवेश करते ही लगा मानो चाँद-सितारों की दुनिया में आ गए हों। नीले रंग से पेंट किए इस कमरे में छत पर चाँद-तारे बने थे। दीवारों पर खूबसूरत चित्र थे। कक्ष एक स्वप्न-लोक का-सा आभास दे रहा था। कमरे में एक अर्धचंद्राकार बेंच रखी थी। नीचे बीचों-बीच चादर बिछी थी। दो बच्चे नीचे चादर पर बैठे बड़ी-सी किताब खोले चित्रों में खोए हुए थे।

लाइब्रेरी में कहीं न कोई रोक-टोक थी न ही किसी प्रकार का बंधन। बच्चों को पूरी आज़ादी थी अपनी पसंद की किताब चुनने की, जितनी देर तक चाहो उस किताब को देखने की, उलटने-पलटने की और पढ़ने की। बच्चे किताब रैक से निकालते, उसे देखते, अगर किताब पसंद न आती तो उसे तुरंत रखकर नयी किताब की ओर लपकते। बच्चे तकरीबन एक घंटे वहाँ रहे। कोई बच्चा सीढ़ी पर बैठा किताब पढ़ रहा था तो कोई कुर्सी पर। कुछ बच्चे नीचे बिछी चादर पर इत्मीनान से बैठे, अधलेटे किताब में मगन थे। उन्हें किसी ने न रोका, न ही टोका। वहाँ कई बच्चे थे, बच्चे आपस में बातें भी करते, एक-दूसरे को किताबें भी दिखाते। शिक्षक भी बच्चों की मदद कर रहे थे, पर किसी भी प्रकार का शोर-गुल नहीं था। अनुशासन के नाम पर बच्चे स्वयं अनुशासित थे क्योंकि वहाँ पर वह सब कुछ था जो एक बच्चा चाहता है। पसंद की किताबें, बच्चों के कद के मुताबिक बनायी गई छोटी-छोटी कुर्सी-मेज़ और रैक। दीवारों पर लगे खूबसूरत

चित्र, इतना ही नहीं एक मेज पर शतरंज भी रखा था। बीच में दो-तीन बच्चे आए, शतरंज की गोटियाँ उठाईं, पाँच-दस मिनट खेल फिर किताबों की ओर चले गए। बच्चे एक अनूठी ही दुनिया में विचरण कर रहे थे- वह दुनिया थी किताबों की दुनिया। बच्चों के साथ आई शिक्षिका से बातचीत करने पर मालूम पड़ा कि वहाँ प्रत्येक विद्यालय में कक्षा में रीडिंग कार्नर में तो किताबें होती ही हैं, इसके साथ ही सप्ताह में एक बार बच्चों को सार्वजनिक पुस्तकालय भी ले जाया जाता है और उस दिन की प्रतीक्षा सभी बच्चे बड़ी बेसब्री से करते हैं।

चिल्ड्रन पब्लिक लाइब्रेरी से हम लौट तो आए पर मन बार-बार वहीं जा रहा था। किताबों से बच्चों का गहरा नाता रह-रहकर आँखों के समक्ष उभर रहा था। साथ ही बरसों से मन के कोने में दबी यह चाह भी फिर उभर आई कि हमारे देश में बच्चों के लिए ऐसे सार्वजनिक पुस्तकालय क्यों नहीं हैं? क्या कारण है कि हम बच्चों के लिए किताबों की ज़रूरत पर ध्यान नहीं देते। बचपन का वह समय जब बच्चा बेहद सक्रिय, उत्साही, और जिज्ञासु होता है उस दौरान किताबों से बच्चे का रिश्ता ही नहीं बनता।

इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि दुर्भाग्य से हममें से अधिकांश इस बात के प्रति जागरूक नहीं हैं कि बच्चे भी किताबों में दिलचस्पी रखते हैं। यही वजह है कि हमारे यहाँ सार्वजनिक पुस्तकालयों की बात तो दूर रही विद्यालयों में भी प्राथमिक स्तर पर पुस्तकालय नहीं होता है। अगर होता भी है तो पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों के लायक किताबें रखी ही नहीं जाती हैं। इस बारे में शिक्षकों, हेडमास्टरों का यही कहना रहता है- अभी बच्चों ने वर्णमाला तो ठीक से सीखी नहीं है, किताब क्या पढ़ेंगे? जो बच्चे पढ़ना जानते हैं, उनके लिए भी विद्यालय में पुस्तकालय से किताब लेकर पढ़ने की मनाही है। शिक्षकों की यही सोच है कि बच्चा अगर कक्षा में कहानी की किताब पढ़ेगा तो पाठ्यपुस्तक कब पढ़ेगा? पुस्तकालय की किताब बच्चे को घर ले जाने के लिए इस डर से नहीं दी जाती कि बच्चा किताब घर ले जाएगा तो यह बात पक्की है कि किताब या तो गंदी होकर ही वापस आएगी या फटकर। और यहीं से शुरूआत होती है बच्चों और किताबों के बीच एक अदृश्य दूरी के बनने की। इस दूरी के ज़िम्मेदार हम सभी हैं - विद्यालय, शिक्षक, अभिभावक और समाज।

हम यह भूल ही जाते हैं कि बच्चों के लिए किताबें केवल किताबें नहीं है। बच्चों के लिए किताबें बहुत मायने रखती हैं। किताबों में उनकी अलग ही दुनिया बसती है। किताबें उन्हें रोचक कहानियाँ सुनाती हैं, किताबों में वे गीत गुनगुनाते हैं। अपनी मनपसंद किताब में डूबकर बच्चा उतना ही सुख पाता है, जितना सुकून उसे माँ की गोदी में मिलता है। किताबें बच्चों को वह सब कुछ मुहैया कराती हैं, जो वो चाहते हैं। किताबों में उनकी कल्पना पर लगाकर ऊँची उड़ान भरती है। किताब पढ़ते-पढ़ते बच्चे तितली के साथ, दौड़ते हैं, पतंग के साथ आसमान में उड़ते हैं, नाव के साथ नदी में हिलोरें मारते हैं, झूले में बैठ हवा

की सैर करते हैं, रंग-बिरंगे फूलों के साथ बाग-बगीचों में महकते हैं। कोयल की कूहू, पपीहे की पीहू, नदियों की कल-कल, झरने की गुनगुन सुनने को मिलती हैं उन्हें किताबों में। हाथी की चिंघाड़, शेर की दहाड़, चीते की चपलता, खरगोश की चंचलता, लोमड़ी की चालाकी, इन सबकी झलक देकर किताबें बच्चों को उभयारण्य की सैर भी कराती हैं। रेलगाड़ी, मोटरगाड़ी, हवाई जहाज के साथ परीलोक ले जाता उड़नखटोला भी तो है किताबों में। किताबों में आम, आइसक्रीम का आनंद है तो किताबें मनोरंजन करती हैं, किताबें खेल कराती हैं, किताबें बहुत कुछ सिखाती हैं। किताबें बच्चों को भाती हैं, उन्हें लुभाती हैं, अपने पास बुलाती हैं। बस ज़रूरत है, बच्चों को इस संसार में दाखिल कराने की। और सार्वजनिक बाल पुस्तकालय बच्चों को किताबों की दुनिया में ले जाने में अहम भूमिका निभा सकते हैं।

बच्चे तो स्कूल में दाखिल हो गए, अब स्कूल में बच्चे के लिए पुस्तकालय या विद्यालयी पुस्तकालय में पहली-दूसरी कक्षा के बच्चों के लिए किताबें उपलब्ध कराने की ज़िम्मेदारी स्कूल की है। कई बार शिक्षक तथा प्रधानाध्यापक संसाधनों की कमी का रोना रोते हैं। यूँ तो अब सभी सरकारी विद्यालयों में प्रतिवर्ष टीचिंग लर्निंग मटीरियल के लिए राशि मिलती है। इस राशि के अतिरिक्त थोड़ी-सी सूझ-बूझ और प्रयास से विद्यालयी पुस्तकालय या कक्षा के कोने में पुस्तक कोना बनाने के लिए किताबों का प्रबंध किया जा सकता है। वैसा ही प्रयास जैसा बरसों पहले गिजुभाई ने किया था।

किताबें जुटाते, खरीदते समय इस बात के प्रति सजग होना ज़रूरी है कि किताब बच्चों के मन की हो। हमारे यहाँ प्रचुर मात्रा में बाल साहित्य मौजूद है, लेकिन अगर इन किताबों को देखा जाए तो बहुत कम किताबें ऐसी हैं जो बच्चों के अनुकूल हैं। अधिकतर किताबें सोद्देश्य लिखी जाती हैं। लेखन के दौरान अधिकतर यह सोच हावी रहती है कि इन्हें पढ़ने के बाद बच्चे में देशभक्ति, सत्यनिष्ठा, बड़ों का सम्मान जैसे मूल्य विकसित होंगे। ऐसी किताबें जब बच्चा उठाता है तो उसे वह आनंद नहीं मिलता जिसे पाने के लिए उसने किताब उठाई थी। वही किताबें बच्चों के लिए चुनें जो बच्चों के परिवेश से जुड़ी हों, जिनकी भाषा बच्चों की अपनी भाषा हों, जिनकी विषयवस्तु ऐसी हो जो बच्चों की रोज़मर्रा की ज़िंदगी से जुड़ी हो।

❑❑❑

पुस्तक के पन्नों से 9

शिक्षक हों तो*

गिजुभाई बधेका

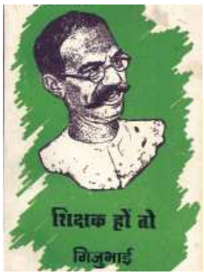

सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् गिजुभाई बधेका ने शिक्षण को लेकर नए-नए प्रयोग किए। उन्होंने शिक्षा और बच्चों को लेकर अनेक किताबें लिखीं। ये पुस्तकें शिक्षकों का मार्गदर्शन करती हैं। इन्हीं में से एक किताब है-'शिक्षक हों तो'। इसी किताब से तीन अंश यहाँ दिए जा रहे हैं-

बच्चों के साथ बातचीत

बच्चे बालमंदिर में आते हैं, संगीत की कक्षा में बैठते हैं, मोंटेसरी के उपकरणों पर काम करते हैं, विभिन्न खेल खेलते हैं, कहानी, लोकगीत व आदर्श वाचन सुनते हैं, नाटक देखते हैं, नाश्ता लेते हैं और घर लौट आते हैं, काम अच्छी तरह से चलता है और बच्चे आगे बढ़ते हैं, लेकिन अगर इनमें एक काम रह जाए तो इतने सारे काम होने के साथ एक महत्वपूर्ण काम नहीं हो पाया, यही कहा जा सकता है। यह एक काम है बच्चों के साथ हमारी बातचीत।

बच्चे अंदर ही अंदर बातचीत करके अपनी अनेक भ्रांति की ज़रूरतें तृप्त कर लेते हैं, एक-दूसरे के संपर्क में आकर आपसी लाभ उठाते हैं, पर इसके अलावा उन्हें हमारे प्रत्यक्ष परिचय की, हमारे साथ बातचीत करने की भी ज़रूरत पड़ती है। बड़ों के पास बैठकर अपनी छोटी-छोटी बातें सुनाना उन्हें पसंद आता है। बच्चों में अपने संबंध में दूसरों को बातें बताने की एक स्वाभाविक वृत्ति होती है। इसी के द्वारा बच्चों को यह संतोष व आनंद मिलता है कि दूसरों के बीच उनकी गिनती है। अपने निजी आनंद में दूसरों को सहभागी बनाने की मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति के कारण बालक स्वयं जो आनंद अनुभव करते हैं, उनकी तरह-तरह की बातें बड़ों को सुनाने के लिए वे उनके पास दौड़े चले जाते हैं। पसंद न आने वाली बातें दूसरों को बताने से उन्हें आराम मिलता है, मन में भरी हुई बातों को स्वजनों के सामने व्यक्त कर देने से उनका दिल हल्का होता है। पराये

* पुस्तक *शिक्षक हों तो* से साभार (प्रकाशक- मोंटेसरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर, चुरू)

लोग अपने हैं तभी तो अपनी बात सुनते हैं, इस विचार में एक तरह की शांति है। ये सब बातें बड़े या छोटे बातचीत के द्वारा ही प्राप्त करते हैं। दूसरों के संबंध में अपनी राय, तरफदारी या विरोध बातचीत के द्वारा ही प्रकट किए जा सकते हैं। ऐसे-ऐसे कारणों से बच्चे घर में बड़ों के साथ, बड़े भाई-बंधुओं के साथ बातचीत करने को स्वत: प्रेरित होते हैं। शाला में या घर-बाहर भी वे बातचीत करने का अवकाश ढूँढ़ते रहते हैं।

जिस प्रकार से बच्चे को अपने विकास के निमित्त बातचीत करने की ज़रूरत पड़ती है, उसी प्रकार हमें भी शैक्षिक दृष्टि से उनका अध्ययन करने के लिए उनसे बातचीत करनी चाहिए। ज़रूरत भिन्न-भिन्न दृष्टि से है, फिर भी दोनों के लिए एक ही व्यापार स्वीकारने की आवश्यकता है। हमारा स्वतंत्र विद्यालय एक प्रयोगशाला है। बच्चे का अवलोकन करना इसका प्रमुख व्यवसाय है। संगीत, खेल आदि प्रवृत्तियों के द्वारा एक तरह का अवलोकन होता है, बातचीत अवलोकन का एक विशेष साधन है। बच्चे बातचीत में जब खुलते हैं तो अपने विचार पूर्णत: प्रकट करते हैं। बातचीत के द्वारा हमें बालक की पसंद-नापसंद का पता चलता है, उनसे हम उनकी भाँति-भाँति की प्रवृत्तियों के हेतुओं को जान सकते हैं। बच्चे के मित्र-अमित्र कौन हैं और जिन कारणों से हैं, किनके बिना उनका काम चलता नहीं, कौन उनका सच्चा मार्गदर्शक है और कौन किसके कितना अधीन है और अपने अधीन है, ये सारी बातें बातचीत के द्वारा ही जानी जा सकती हैं। आज वह घर के कैसे वातावरण से आया है, भीतर से प्रसन्न है या अप्रसन्न, आदि बातें भी बातचीत के द्वारा जानी जा सकती हैं। अलग-अलग लोगों के प्रति उनकी भावना, वस्तु के प्रति चाह व समझ, विभिन्न घटनाओं का उसके मन में कैसा अर्थ है, अलग-अलग प्रसंगों की उसके मन पर कैसी छाप पड़ी हुई है, उसकी सत्य-असत्य की, पाप-पुण्य की कल्पना कैसी है, ये सब बातें बातचीत के द्वारा ही हमारे सामने आती हैं।

बातचीत से एक दूसरा लाभ भी है। सामान्यतया बच्चे बड़ों से डरते हैं, बड़ों ने भी अपने से उन्हें डराया होगा। पिता से डरने वाले बच्चे घर के बाहर आते ही मास्टर, पुलिस या पिता जैसे लगने वाले व्यक्तियों से भी डरते हैं। इसी से स्वतंत्र वातावरण में भी बच्चा शिक्षक से डरता हुआ देखने में आता है। वह उनमें विश्वास नहीं करता, उनसे दूर भागता है, उससे अपनी ज़रूरत की चीज माँगने में संकोच करता है। बातचीत का प्रसंग ऐसा है कि बच्चे धीरे-धीरे दूसरों के सामने अपनी बातें रखते हैं।

कई बच्चे मूलत: शर्मीले होते हैं। दूसरों से कम बोलना या न बोलना ये उनकी विशेषताएँ होती हैं। जहाँ सब बच्चे शिक्षकों के साथ बातचीत करते देखने में आते हैं, वहाँ ऐसे बच्चे व्याकुल-से एक कोने में जा बैठते हैं। जब शिक्षक बच्चों की भोली-भाली बातों को 'हाँ' 'हूँ' करके प्रेमपूर्वक, मधुर-स्वाभाविक हास्य के साथ सुनता है, तो बाल-हृदय के कपाट खुल जाते हैं, उसका अंत:प्रवाह शिक्षक पर ढुलकने लगता है और शिक्षक के कानों

व हृदय को भरकर उसे खुश कर देता है। बच्चे शिक्षक की आँखों में आँखें पिरोकर तथा प्राणों से प्राण मिलाकर अपनी गुप्त और जाहिर, मूर्खता की और बुद्धिमानी की, सही और गलत करने की, चोरी और साहूकारी की, माँ की और पिता की सारी की सारी बातें कह देता है। इससे शिक्षक का काम सरल बन जाता है। बच्चा उसके नजदीक आते ही अधिक से अधिक अभिमुख बन जाता है, शिक्षक जो कुछ भी करता है वह उसे प्रिय लगता है, उसे अपने हृदय में कहीं गहरे ऐसा आभास होने लगता है कि शिक्षक जो कुछ करता है उसके भले के लिए करता है।

बातचीत के द्वारा शिक्षक बच्चे के दिल की गहराई में जा सकता है, साथ ही साथ बच्चे की भाषायी कमियों तथा उसकी असंस्कारिता आदि को भी जान सकता है। रोज़ाना बातचीत करने की आदत डालने से बालक का भाषा परिचय बढ़ता है, विचारों को संजोने एवं व्यक्त करने की विधि पुष्ट बनती जाती है तथा साथ-साथ भाषा के प्रयोग के द्वारा संस्कारी जीवन को तथा रसिक एवं सभ्य वृत्ति को कैसे प्रकट किया जाए, इसकी तैयारी भी होती जाती है।

बातचीत का सामूहिक प्रसंग एकाकी बालकों को सामूहिक जीवन सुलभ कराता है। समूह के बीच बातचीत करते समय बच्चे को अपनी बात फटाफट कह डालने के जल्दबाजी-स्वभाव पर नियंत्रण करना पड़ता है। वह सभ्य शब्दों का व्यवहार करना सीखता है। वह इसी भावना से दूसरों की बातें सुनता है और उनमें बाधा नहीं डालता कि लोग उसकी बात को भी इसी भावना से सुनें तो बेहतर रहे। बातचीत के विभिन्न विषयों से उसका क्षेत्र विस्तृत होता जाता है, साथ ही बातचीत के द्वारा अवलोकन तथा अनुभव के क्षेत्र भी उघड़ते जाते हैं।

इस तरह बातचीत से अनेक लाभ होते हैं। सुव्यवस्थित बातचीत के परिणामस्वरूप अभिमुखता और अनुशासन-व्यवस्था के अनेक प्रश्नों का समाधान होता जाता है। दिन भर में एकाध ऐसा मौका आना ही चाहिए। किंडर गार्टन शाला में इसे 'वार्तालाप मंडल' कहा जाता है। डॉ. मांटेसरी ने भी इसका समर्थन किया है। हमारा अपना अनुभव भी इसकी आवश्यकता को स्वीकारता है।

बातचीत करने वाला शिक्षक कैसी बातचीत चलाए, यह भी जान लेना चाहिए। बच्चों ने क्या खाया, क्या पीया, घर में क्या-क्या खेल खेले, किन-किन दोस्तों से कैसी-कैसी बातें कीं, घर में कैसे मन रमा आदि बातें शिक्षक को करनी चाहिए। इसके बाद में बच्चे के शरीर एवं कपड़ों की साफ-सफाई, अपने मंदिरों, चीजों को सँभाल कर रखना, व्यवस्था, स्वच्छता आदि बातें चलें। मंदिरों में क्या अच्छा लगता है क्या नहीं लगता, नयी चीजें क्या-क्या चाहिए और क्या-क्या नहीं चाहिए। इन संबंधों में बातचीत होनी चाहिए। कोई दुर्घटना घट जाए तो बातचीत चले। चाही-अनचाही घटनाएँ घटने पर बातचीत का अवसर निकल जाना चाहिए। त्योहारों के दिन, उनसे अगले दिन, पिछले दिन, ग्रहण आदि के बारे में भी बातें की जा सकती हैं। सर्दी के मौसम में कड़कड़ाती ठंड की, गर्मी

में जलाने वाली धूप की, वसंत ऋतु में पक्षियों के चहचहाहट की और नव पल्लवित वनस्पति की, पतझड़ में झड़े हुए पत्तों की, वर्षाकाल में नए-नए जीवों, मेंढ़कों, पतंगों, आदि-आदि की बातें की जानी चाहिए। इन बातों में बड़े पांडित्य और पाठ का उपदेश या व्याख्याता वाली गंभीरता नहीं होनी चाहिए। पर हाँ, इनमें प्रकृति का थोड़ा बहुत परिचय तथा वैज्ञानिक ज्ञान की थोड़ी-बहुत तराश होनी चाहिए। भाषा का अच्छा परिचय तो हो ही। चतुर शिक्षक को ऐसे अवसर पर पढ़ाने का लोभ नहीं करना चाहिए। बेशक, वह ज्ञान के बहुविध मार्गों को उघाड़ सकता है।

बातचीत में शिक्षक बनावटी न बनें। बातचीत के बनावटी अवसर न खोजें। सहज ही जो प्रसंग आ जाए, उसका लाभ उठा ले। यह मान कर न चले कि रोज बातचीत चलानी ही है। वह हर वक्त बच्चों की बातचीत को प्रोत्साहित करे। बच्चों की ही बातें अधिक हों, हमारी बातें तो जरूरत के मुताबिक हों। कहीं अध्यापक बच्चों को बातूनी न बना दें। उसे यही देखना है कि बातचीत के द्वारा प्राप्त ज्ञान को बालक गले उतारना सीख गया या नहीं। बनावटी प्रोत्साहन देने की ज़रूरत नहीं है। इस बात का खास ध्यान रखा जाए कि बातचीत का प्रसंग कहीं घर की शिकवे-शिकायतें न बन जाए। इन्हें लेकर बच्चों को उकसाने का मौका न मिले। क्योंकि बच्चों में परस्पर शिकायतें करने की आदत होती है। कहीं बातचीत का यह स्थल इनमें पोषण का स्थल न बन जाए और हाँ, न्यायालय भी न बने। माता-पिता के बारे में बच्चे ज्यादा बातें करे या घर की गहरी बातें करे तो उनको प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। बच्चे अपनी ही बातें करें और हम उनका ही अध्ययन करें। उससे सारांश निकाल कर हमें बालकों व उनके माता-पिता के लिए कोई रास्ता सुझाना चाहिए। जहाँ बच्चों के सामने हमें अपना अभिप्राय प्रकट करना जरूरी न हो, वहाँ नहीं करना चाहिए। यह ध्यान रहे कि बातचीत में बच्चों की रंचमात्र भी निंदा या स्तुति न की जाए। संक्षेप में, उक्त उद्देश्यों को पूरा करने के लिए बातचीत की जानी चाहिए।

गलती न निकालें

बाल-मंदिर में एक मेहमान आए। चित्रकला में उनकी थोड़ी-बहुत गति होगी। मैंने उनसे कहा, "घूमिए और देखिए कि बच्चे क्या करते हैं। आपको अपने-आप पता लग जाएगा कि स्व-शिक्षण का काम कैसे चल रहा है। बस, इतना ध्यान रखिए कि बच्चों को आप हिदायतें न दें, और गलतियाँ तो हर्गिज़ न निकालें।"

वे घूमने लगे। एक बच्चा वाटर-कलर कार्य करने लगा। उसने बक्सा, ब्रुश और पानी की बाटकी ली। बक्सा खोला और कागज को टेबिल पर रखा।

वे सज्जन मेरे पास आए और उन्होंने कहा, "बक्सा साफ होना चाहिए, उनमें रंग लगे हुए होने से वे रंग दूसरे रंगों को खराब करेंगे। बच्चे से रंगों को साफ करने को कहा जाना चाहिए।"

मेरे मन में धीरज था। मैंने कहा, "देखिए, वह क्या करता है।"

इतने में बच्चा उठा और उसने गीले कपड़े का टुकड़ा लाकर बक्सा साफ किया, ब्रुश को धोया और रंग बनाने लगा।

मुझे उन सज्जन को कुछ भी कहना न पड़ा। पता नहीं उन्होंने इस पर गौर किया था या नहीं। पर इस संबंध में वे मूक ही रहे।

बच्चे ने एक पत्ती में नीला रंग भरा। रंग भरते समय बच्चा एकाग्र व खुश था। एक बड़े चित्रकार जैसी गंभीरता और स्थिरता उसमें थी। अपने हिसाब से वह एक महान् सृजनात्मक कलाकृति बनाने बैठा था।

वे सज्जन उस बच्चे के पास गए और बोले, ''नीले रंग से भरी गई इस पत्ती में लहरें पड़ी हैं। बच्चे को यह बताना चाहिए कि रंग भरते समय उसमें लहरें न पड़ें। उसे रंग को बीच में नहीं छोड़ना चाहिए। एक किनारे से रंग को नीचे उतारते जाना चाहिए। अगर बच्चे यह विधि नहीं अपनाएँगे तो रंग करना उन्हें आएगा नहीं।''

मैं धैर्य से सुनता रहा। उनका मान रखते हुए मैं कुछ नहीं बोला।

वे जो बोल रहे थे, उसे चित्र बनाने वाले बच्चे सुन रहे थे।

वे मेरे पास से उन बच्चों के पास गए और किसी एक से कहा, ''ब्रुश को ऐसे नहीं, ऐसे पकड़ना चाहिए।''

बच्चों ने चित्र बनाना बंद कर दिया। उनका मुँह उतर गया, वे निराश हो गए।

मैं तो वहाँ से अपना काम करने चला गया। थोड़ी देर बाद बच्चों ने मेरे पास आकर जरा संकोच और हास्य के साथ मुझसे कहा, ''वे सज्जन हमारी गलतियाँ निकालते हैं। कहते हैं कि लहरें पड़ जाएँगी और ऐसा हो जाएगा। इसलिए चित्र बनाना अब हमें पसंद नहीं। हम चित्र नहीं बनाएँगे।''

मैंने कहा, ''ठीक है, मत बनाओ।''

बच्चे वहाँ से चले गए।

उन सज्जन से मैंने बात की तो उन्होंने कहा, ''गलती क्यों न निकालें? गलती नहीं निकालेंगे तो फिर बच्चे सुधारेंगे कब?''

मैंने उत्तर दिया, ''आपने उनकी गलती निकाली, जिसका सीधा परिणाम तो आपने अपनी नजरों के सामने ही देख लिया। बच्चों ने काम करना ही बंद कर दिया। उनके मन में आपके प्रति अनादर का भाव आ गया। अब उनकी त्रुटि सुधरी या नहीं, यह तो और बात है, पर काम करना तो बंद हो ही गया ना! काम करने का उनका आनंद भी जाता रहा। आज के दिन की चित्र-प्रवृत्ति का तो भोग लग गया और आज के दिन जो कुछ उनका विकास होता, वह रुक गया।''

मैंने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा, ''हमें काम करते हुए बच्चे का सिर्फ अवलोकन करना चाहिए। अगर हमें लगे कि उनके काम करने की रीति में या साधन में कोई दोष है या त्रुटि है तो हमें पता लगाना चाहिए कि वह किस कारण से है और उस कारण को हमें दूर करना चाहिए। उदाहरण के लिए बच्चे की पेंसिल अच्छी तरह से निकाली हुई नहीं है और उससे लाइन खराब आती है या कागज अच्छे किस्म का न होने से उस पर रंग फैल जाए, तो हमें कागज व पेंसिल को बदलना चाहिए।''

इसके बाद मैंने उनसे कहा ''अगर बच्चे के काम में पूर्व तैयारी की अपरिपक्वता के कारण कभी कमी दिखे, तो उसकी त्रुटि निकाले बगैर जो काम पहले पक्का होना चाहिए था और

जो बराबर हुआ नहीं, उसे पहले पूरा करने देना चाहिए। उदाहरण के लिए रंग भरने के काम में बच्चे को अधूरा ज्ञान हो। जहाँ पर एक बराबर रंग भरा हो वहाँ बराबर एक-सरीखे रंग न भर सके, एक में नीला रंग भर जाता है और दूसरे में उससे भिन्न दूसरा रंग भर जाता है, तो ऐसे में उसे रंग की तख्तियों पर काम करने बिठाना चाहिए। जब यह काम पूरा हो जाएगा तो उसकी आँखें स्वत: रंग-संबंधी अपनी भूल को ठीक कर लेंगी। और फिर गलती होने का अर्थ यह है कि बच्चे अभी पूर्णता के मार्ग पर हैं, संतुलन लाने की कोशिश में हैं। भूल को सुधारने से संतुलन नहीं आएगा। इसके लिए बच्चे को अपने-आप प्रयत्न करके अपनी अपूर्णता को पूर्ण कर लेने दो। अगर बच्चे को ऐसा करने की छूट होगी, टोका-टोकी नहीं की जाएगी, उसमें अविश्वास नहीं होगा, तो भले ही उसे हजार बार दोहराना पड़े, पर वह पूर्णता प्राप्त करेगा ही करेगा। पूर्णता प्राप्त करना व्यक्ति का स्वभाव है। अगर इस तथ्य में हमारा विश्वास है तो बच्चे को भूल करने के लिए मुक्त छोड़ा जा सकता है।"

''इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि पूर्ण क्या है, अपूर्ण क्या है, भूल-सहित क्या होता है- ये बातें बच्चे को बताई ही न जाएँ। हम उनके सामने अच्छा आदर्श रखें, पर गलती न निकालें। गलती निकालने का अर्थ यह है कि हम बच्चे को हल्का और अज्ञानी मानते हैं। गलती निकालने का हमारा कारण यह है कि हम उस गलती को सहन नहीं कर पाते । इसमें हमारे अपने धैर्य की कमी है। गलती निकालने से बच्चे में अपने प्रति अविश्वास और हमारे प्रति क्रोध पैदा होता है। जहाँ कहीं भी गलती निकाल कर उपदेश दिया जाता है वहाँ यही होता है।''

''पर जहाँ आदर्श पेश करना हो वहाँ भी उपदेश जैसी बात न हो, गलती निकालने या किसी व्यक्ति के काम की निंदा करने जैसा कुछ न हो। भई, ऐसा करने से काम सुंदर होता है, ऐसा करने से काम बनता है- इस तरह बताने -कहने से जिस-जिस बच्चे को जिस-जिस चीज़ की जरूरत होती है वह राजी-खुशी अपने आप ले लेता है। उसे पता भी नहीं चलता कि कब तो उसने काम अपने हाथ में लिया था, और कब बिना त्रुटि के उसका काम पूरा हो गया। आँखों के समक्ष सुंदर आदर्श रहता है तो काम के प्रति बच्चे सहज रहते हैं और उसको प्रयत्नपूर्वक करते-करते वह सिद्धि हासिल कर लेते हैं। उसे अपने काम करने में आनंद आता है और भीतर यह विश्वास पैदा होता है कि किसी ने उसे सिखाया भी नहीं था।''

अतएव बच्चे को गलती बताने के बजाए उसे कोई अलग प्रसंग लेकर बताना चाहिए कि किसी काम को बहुत अच्छी तरह से कैसे किया जा सकता है। इससे बच्चा अपने आप शक्ति प्राप्त करेगा और अपनी अपूर्णता को दूर हटा देगा।

मना करने की निडरता

कुछ बच्चे इतने निडर देखने में आते हैं कि अगर हम उनसे पूछें, ''संगीत में आओगे?'' तो जवाब देंगे, ''नहीं।'' अगर पूछें, ''चित्र बनाओगे?'' तो कहेंगे, ''नहीं।'' ऐसे बच्चे 'ना' क्यों कहते हैं, क्योंकि इनका कारण उनके पास

होता नहीं। 'ना' के सिवा कोई अन्य कारण उनके पास होता तक नहीं। 'ना' कहने की उनमें आदत पड़ जाती है। संगीत पसंद न हो और 'ना' कहें तो ठीक, चित्र बनाना पसंद न हो और 'ना' कहें तो चलेगा, लेकिन क्या पसंद है और नहीं, इसका पता ही न चले और बच्चे मना करते जाएँ, तो उसका क्या करें?

अगर हम उनकी 'ना' को चलने दें और वे जो न करने को कहें, वह उनसे न कराएँ तो क्या इसे उचित कहा जाएगा? ऐसा करने देने में क्या उन्हें स्वतंत्रता दी गई, ऐसा दिखेगा? अथवा उनकी 'ना' को अनसुना करके जिस काम के लिए वे 'ना' कहें, वह काम उनसे जबरन कराएँ तो क्या यह समझा जाएगा कि उनकी स्वतंत्रता छीनी गई?

कई बार बच्चे इस तरह के भी होते हैं, जिन्हें हम बिगड़े (स्पोइल्ट) कहा करते हैं। कोई चीज किसी व्यक्ति को पसंद न आए तो बच्चे सचमुच 'ना' कह देते हैं, लेकिन उसके बाद तो वे 'ना' कहने के रास्ते पर ऐसे चढ़ जाते हैं कि इसके कारण उनमें इंकार करने की बुरी आदत पड़ जाती है। कई बार दूसरों को 'ना' बोलते देखकर वे उनका अनुकरण करते हैं। वे समझते भी नहीं कि दूसरे बच्चे 'ना' क्यों बोल रहे हैं। कई बार कुछेक बच्चों को इंकार करने का ऐसा अनुभव हो जाता है, कि उसके बाद तो वे अपने उस अनुभव को सर्वत्र प्रयोग करते हैं और हर जगह 'ना' बोलते रहते हैं।

कई बच्चों की ऐसी धारणा ही बन जाती है कि उनसे कुछ नहीं हो सकता। किसी बात के लिए 'हाँ' बोलना, यानी बहुत बड़ी जानकारी और ज्ञान की ज़रूरत! अपने प्रति उनमें इतना अधिक अविश्वास होता है कि 'ना' बोलकर छूट जाते हैं। 'ना' बोलने के पीछे उनका यह आशय नहीं होता कि आज्ञा नहीं मानी जाए, बल्कि वे अपनी असमर्थता को बताना नहीं चाहते। इसलिए इंकार करके खड़े रह जाते हैं।

कई बच्चों को 'ना' और 'हाँ' के परिणाम का पता नहीं होता। 'हाँ' कहने से क्या होगा, इसका निश्चित पता न होने के कारण उन्हें 'ना' की शरण लेना ठीक लगता है।

ऐसा नहीं है कि केवल बच्चों में 'ना' बोलने की आदत होती है, बल्कि बड़े आदमियों में भी यही बात देखने में आती है। वे कहते हैं कि 'बस, अमुक चीज तो मुझे भाती ही नहीं। यह तो मैं हर्गिज नहीं खाऊँ!' हम ज़रा उनसे पूछें कि, 'किसी रोज़ खाकर भी देखी है?' तो जवाब देंगे, ''पर भाती नहीं है, तो क्या करूँ?'' हम कहेंगे, 'एक बार खाकर तो देख लो।' तो कहेंगे, ''भाएगी नहीं, तो?''

इस तरह से मना करने वालों को सही रास्ते पर लाया जा सकता है। मना करने के पीछे खास तौर से जो कारण हो, उसे ढूँढ निकालना है। जो देखा-देखी इंकार करते हैं उन्हें 'हाँ' के वातावरण में रखना होगा। अशक्ति के कारण जो मना करें उन्हें ऐसे काम सौंपे जाएँ, जो उनसे हो सकें। ऐसा निर्णय करके ही काम सौंपने की 'हाँ' लेनी चाहिए। जिनका आत्मविश्वास समाप्त हो गया हो, उनको ऐसे काम सौपें जाएँ कि जिससे उन्हें लगे कि वस्तुत: मना करने का तो कोई कारण ही नहीं था। उन्हें यह भरोसा दिलाना होगा कि 'ना' कहना उनकी भूल थी।

अगर मना करने के पीछे मास्टरजी का भय, असफलता की चिंता या उपहास जैसा कोई विचार हो तो उन्हें विश्वास दिलाना होगा कि वह सब नहीं होगा। ऐसा विश्वास तो उन्हें दूसरों के उदाहरण से ही, यानी उचित वातावरण में रखकर ही दिया जा सकता है, लेकिन इनके बावजूद अनेक बच्चे जल कमलवत् रहते हैं। उनकी निडरता उग्र होती है। उन्हें 'हाँ' कहने में भी जैसे शर्म लगती है।

हमारा काम बच्चों से 'हाँ' कहलवाना नहीं है। बच्चे 'हाँ' भी कह सकते हैं और 'ना' भी। आज्ञा मान भी लें, और न भी मानें, लेकिन वह सब सकारण हो तभी चले। अगर बच्चे जबरन आज्ञा मानते हैं तो उसका कोई नैतिक मूल्य नहीं, यही नहीं, अपितु ऐसा करने से नैतिक अध:पतन होता है। फिर जबरन 'हाँ' कहलवाने से हम बच्चे को स्वमताग्रही बनने के मार्ग पर ले जाते हैं। यह बात ध्यान में रखते हुए शुरुआत में ऊपर वर्णित बच्चों पर 'हाँ' का प्रयोग करने की ज़रूरत है। प्रयोग करने पर पता लग जाएगा कि बच्चे का 'ना' करने का वास्तविक कारण क्या है? 'ना' को 'हाँ' कहलवाने की जरूरत थी या नहीं, अथवा उसकी 'ना' ही उसे मुबारक देने की इष्ट है या नहीं, आदि-आदि।

स्वाद चखे बिना ही इंकार करने वाले बच्चे को एक बार आग्रहपूर्वक स्वाद चखाएँगे तो वह आश्चर्यचकित हो जाएगा, सोच में पड़ जाएगा और यह प्रश्न वह अपने आपसे पूछेगा कि अब तक वह किस कारण से 'ना' बोल रहा था। अगर उसको वह पकवान भाता ही न हो और स्वाद चखने के बावजूद उसे अच्छा न लगे तो हम भी जान सकेंगे कि उसे अमुक चीज नहीं भाती। संगीत में न आने वाले बच्चे को संगीत का स्वाद चखाते ही अगर वह नींद लेने लगे तो उसके पीछे अकेली निडरता नहीं थी, अपितु संगीत के प्रति अरुचि थी, यही समझना चाहिए।

कितने ही अति नाज़ुक वृत्ति वाले बच्चों को पहले ही स्वाद में उल्टी जैसा लगेगा, उल्टी हो भी जाएगी, लेकिन अगर यह सब बाहरी आवरण मात्र होगा तो थोड़े ही समय में उसके प्रति वह अभिमुख हो जाएगा। यही नहीं, उसमें अपनी निपुणता भी बताएगा।

कितने ही बच्चों में क्रियाशक्ति संस्कारित ही नहीं होती। उन्हें कुछ करना या न करना दोनों कठिन लगते हैं। इस कारण वे प्रत्येक काम करने से इंकार कर देते हैं। ऐसे बच्चों से ऐसा आग्रह नहीं रखना चाहिए कि अमुक काम ही कराना है, परंतु उनकी क्रियाशक्ति का बल बढ़े, इसके लिए जिससे मुख्यत: क्रियाशक्ति का प्रयोग होने लगे, ऐसी कोई मनपसंद क्रिया करने का प्रबंध किया जाना चाहिए। जब उनमें क्रियाशक्ति आ जाएगी तो वे प्रत्येक काम करने लग जाएँगे।

अनेक बच्चे ऐसे होते हैं जो 'हाँ' या 'ना' बोलने में तुलनात्मक निर्णय ही नहीं कर सकते। उनसे 'हाँ' कहलवाने की ज़रूरत नहीं। उन्हें ऐसे कार्यों की ओर ले जाना चाहिए जिससे उनकी बौद्धिक-शक्ति का विकास हो। बौद्धिक-शक्ति बलवान होते ही वे स्वत: निश्चय कर लेंगे, तथा पहले निश्चय न कर पाने के कारण इंकार

कर बैठते थे, उसके बदले सोच-विचार कर 'हाँ' या 'ना' कहेंगे।

अब रहा ऐसे बच्चों का प्रश्न, जिन्हें मना करने में ही मज़ा आता है। वे सब कुछ जानते हैं, कर भी सकते हैं, फिर भी इंकार करने में एक तरह की अपनी होशियारी या शक्ति मानते हैं और इंकार करके भाग लेते हैं तथा स्वयं अपने मन में और दूसरों के सामने इसका बखान करते हैं। ऐसे बच्चे सचमुच बिगड़े हुए कहलाते हैं। ऐसे बालकों से तो 'हाँ' कहलवाना ही एकमात्र उपाय है। ऐसे बच्चों की 'ना' नहीं चलनी चाहिए। 'हाँ' कहलवाने में उनकी आज़ादी नहीं छिनेगी। भले ही वे मना करें, लेकिन उनसे उपयोगी व उत्कर्षशील कार्य कराए जाने चाहिए। जब एक बार उन्हें भरोसा हो जाएगा कि अब मनाही नहीं चलेगी तो वे 'हाँ' भरने लगेंगे, काम करेंगे और अब तक इंकार करने के कारण जो स्वस्थ काम का आनंद या मज़ा नहीं लिया, उसका अनुभव लेंगे। जैसे-जैसे उनके काम का आनंद, ज्ञान की खुशी और विकास का अनुभव बढ़ता जाए, वैसे-वैसे हमें उन पर दबाव कम करते जाना है। इस तरह थोड़े समय तक दबाव की दवा पिलाने के पश्चात् उन्हें निरोग खुराक ही देनी शेष रहेगी।

❑❑❑

शोध

10

अहमदाबाद के प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्वप्रेरणा का अध्ययन

प्रवीण वी. गुंजाल*

प्राथमिक शिक्षा संपूर्ण शिक्षा का आधारस्तंभ है। इसलिए प्राथमिक शिक्षा गुणात्मक होनी चाहिए। गुणात्मक प्राथमिक शिक्षा देने की ज़िम्मेदारी प्राथमिक शिक्षकों की है। इसलिए जो भविष्य में प्राथमिक शिक्षक बनने वाले हैं, उन प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों में भी गुणात्मक शिक्षण होना चाहिए और गुणात्मक शिक्षण वही प्राप्त कर सकता है जिसमें उच्च स्वप्रेरणा हो। इसलिए प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्वप्रेरणा का अध्ययन करने का एक नम्र प्रयास इस शोध अध्ययन में किया गया है।

प्रस्तावना

व्यक्ति के वैयक्तिक और सामाजिक विकास का आधारस्तंभ गुणात्मक शिक्षा है। शिक्षा के निष्णात हमेशा असरकारक अध्ययन-अध्यापन, मूल्यांकन, पद्धतियाँ, मूल्यांकन के साधन आदि पर शोध करते रहते है। समग्र विश्व में शिक्षा का प्रचंड प्रसार हो रहा है और उसकी माँग दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। इसलिए शिक्षा के क्षेत्र में संशोधन की सर्वाधिक आवश्यकता है।

प्राथमिक शिक्षा शिक्षा का मूल आधारस्तंभ है। विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास की नींव प्राथमिक शिक्षा में रखी जाती है। इसलिए प्राथमिक शिक्षा गुणात्मक और प्रेरणादायी होनी चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा प्राथमिक शिक्षा देने वाले शिक्षक ही दे सकते हैं। प्राथमिक स्कूल में शिक्षक बनने हेतु प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों में उनके विद्यार्थियों को प्रेरणा देने की शक्ति होनी चाहिए। इसलिए उनमें स्वप्रेरणा भी होनी चाहिए तभी वह विद्यार्थियों को गुणात्मक और प्रेरणादायी शिक्षा दे सकते हैं। इसलिए प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्वप्रेरणा का अध्ययन करना ज़रूरी एवं महत्वपूर्ण है।

* *अध्यापक*, उपमन्यु एजुकेशन कॉलेज, अहमदाबाद, गुजरात

1.1 अध्ययन के उद्देश्य

1. अहमदाबाद के प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्व-प्रेरणा का अध्ययन करना।
2. सामान्य और विज्ञान प्रवाह के प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्व-प्रेरणा का अध्ययन करना।
3. सामान्य जाति और अनुसूचित जाति के प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्व-प्रेरणा का अध्ययन करना।

1.2 अध्ययन की परिकल्पना (Hypothesis)

1. सामान्य और विज्ञान के प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्व-प्रेरणा के प्राप्तांकों के मध्यमानों के बीच सार्थक अंतर नहीं होगा।
2. सामान्य जाति और अनुसूचित जाति के प्राथमिक शिक्षा के प्रशिक्षणार्थियों की स्व-प्रेरणा के प्राप्तांकों के मध्यमान के बीच सार्थक अंतर नहीं होगा।

1.3 न्यादर्श का चयन

प्रस्तुत शोध अध्ययन में अहमदाबाद शहर के 350 प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों को गुच्छा पद्धति (Cluster Method) से न्यादर्श के रूप में लिया गया है।

1.4 शोध उपकरण

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्व-प्रेरणा का अध्ययन करने के लिए स्व-प्रेरणा के क्रम मापदंड की रचना की गई। उसमें सकारात्मक और नकारात्मक विधानों को शामिल किया गया है। इस शोध अध्ययन के लिए कोई प्रमाणित उपकरण उपलब्ध न होने से संशोधक ने स्वनिर्मित उपकरण का उपयोग किया।

1.5 प्रदत्त संकलन की प्रविधि

न्यादर्श और उपकरण निर्धारित करने के बाद संशोधक ने अहमदाबाद शहर के 350 प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों को खुद उपस्थित रहकर स्व-प्रेरणा क्रम मापदंड देकर आँकड़े एकत्र किया।

1.6 प्रदत्त विश्लेषण का पृथक्करण

अध्ययन के उद्देश्य और परिकल्पनाओं का अध्ययन करने के लिए स्व-प्रेरणा क्रम मापदंड के प्राप्तांक प्राप्त किए गए और उसके आधार पर मध्यमान, मानक विचलन, टी-मूल्य प्राप्त करके अंकशास्त्रीय पृथक्करण किया गया।

1.7 विश्लेषण एवं निष्कर्ष

शोध अध्ययन के उद्देश्य और परिकल्पनाओं का विश्लेषण एवं निष्कर्ष निम्नलिखित है –

1. सामान्य और विज्ञान के प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के स्व-प्रेरणा प्राप्तांकों के मध्यमानों के बीच सार्थक अंतर नहीं होगा।

निम्न दी गई तालिका-1 से स्पष्ट है कि सामान्य प्रवाह के प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थी का स्व- प्रेरणा के प्रति मध्यमान 172.0 है और विज्ञान प्रवाह के प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों का मध्यमान 171.21 है और उसका टी-मूल्य 0.40 है जो सार्थकता के

तालिका - 1

प्रवाह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मूल्य	सार्थकता स्तर
सामान्य	286	172.0	13.66	0.40	सार्थक नहीं
विज्ञान	64	171.21	15.73		

स्तर 0.05 के 1.96 के मूल्य से कम है। इसलिए परिकल्पना को स्वीकार किया जाता है और प्रतीत होता है कि सामान्य और विज्ञान के प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के स्व-प्रेरणा के प्राप्तांकों के मध्यमानों के बीच सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका - 2

प्रवाह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी-मूल्य	सार्थकता स्तर
सामान्य जाति	179	174.43	11.65	3.55	0.01
अनुसूचित जाति	171	169.16	15.52		

2. सामान्य जाति और अनुसूचित जाति के प्राथमिक शिक्षा के प्रशिक्षणार्थियों की स्व-प्रेरणा के प्राप्तांकों के मध्यमान के बीच सार्थक अंतर नहीं होगा।

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है, की सामान्य जाति के प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों का स्व-प्रेरणा के प्रति मध्यमान 174.43 है और अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों का मध्यमान 169.16 है और उनका टी-मूल्य 3.55 है। जो सार्थकता के स्तर 0.01 के 2.96 के मूल्य से अधिक है। इसलिए 0.01 कक्षा पर परिकल्पना को अस्वीकार किया जाता है और प्रतीत होता है कि सामान्य जाति और अनुसूचित जाति के प्राथमिक शिक्षण प्रशिक्षणार्थियों के स्व-प्रेरणा में अंतर है।

निष्कर्ष

1. सामान्य और विज्ञान के प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्वप्रेरणा के प्राप्तांकों के मध्यमानों के बीच अंतर नहीं है।
2. सामान्य जाति और अनुसूचित जाति प्रवाह के प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की स्वप्रेरणा के प्राप्तांकों के मध्यमानों के बीच अंतर है और वह सामान्य जाति के प्रशिक्षणार्थियों के हक में है।

1.7 शैक्षणिक उपयोगिता एवं सुझाव

शिक्षा का गुणात्मक स्तर शिक्षकों की गुणवत्ता के स्तर पर निर्भर है। प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थी जो भविष्य में छोटे बच्चों में गुणात्मक शिक्षण की नींव रखने वाले हैं उनमें स्वप्रेरणा होनी आवश्यक है। जिसमें स्वप्रेरणा है वह गुणात्मक शिक्षण दे सकता है। इस तरह शिक्षा में शिक्षकों में स्वप्रेरणा होनी अनिवार्य है। इसलिए मेरे सुझाव निम्नानुसार हैं -

1. सामान्य और विज्ञान प्रवाह के प्रशिक्षणार्थियों में स्वप्रेरणा का अधिक-से-अधिक विकास हो ऐसे प्रयत्न करने चाहिए।
2. अनुसूचित जाति के प्रशिक्षणार्थियों में स्वप्रेरणा का विकास हो इसलिए विविध कार्यों या परियोजना का आयोजन किया जाना चाहिए।

इस प्रकार स्वप्रेरणा गुणात्मक शिक्षा के लिए अनिवार्य है। इसका अधिक-से-अधिक विकास ही वर्तमान शिक्षा की माँग है।

संदर्भ

- देसाई, के. जी. और शाह, आर. पी., 1984, *शैक्षणिक परिभाषा और विभावना*, युनिवर्सिटी ग्रंथनिर्माण बोर्ड, अहमदाबाद।
- शाह, दीपिका, 2004, *शैक्षणिक संशोधन*, युनिवर्सिटी ग्रंथनिर्माण बोर्ड, अहमदाबाद।

लिज़ा किन्डरगार्टन गई जहाँ अध्यापिका ने उसको पढ़ना सिखाने की कोशिश नहीं की ना ही उसे उस ओर धकेला! वहाँ बहुत सारी किताबें, साईन, चिटियाँ और ऐसी ही कई उपयोगी सामग्रियाँ थीं... उसने अपने आप को पढ़ना सिखा दिया! किसी को पता नहीं कि आखिर उसने यह किया कैसे? दरअसल, यह एक ऐसी चीज़ है जिसके बारे में हम सभी कम ही जानते हैं! कई हज़ार बच्चे प्रत्येक वर्ष स्वयं पढ़ना सीख जाते हैं! बेहतर होगा कि हम इस बात को जानने की कोशिश करें कि ऐसे कितने बच्चे हैं! इन्होंने पढ़ना कैसे सीख लिया!

जॉन होल्ट

बालमन कुछ कहता है

मुझे दोस्त पसंद हैं

मैं आंधरा स्कूल मे पढ़ती हूँ। मुझे गणीत विषय पसंद है। मेरे स्कूल मे बहुत सारे झूले हैं। मुझे झूले झूलना पसंद है। मुझे मेरी क्लास टीचर पसंद है। मुझे अपने दोस्त पसंद हैं। मेरे स्कूल मे एक्टीविटी भी होती हैं।

गुंजन
चौथी कक्षा
आंधरा स्कूल
नई दिल्ली

बालमन कुछ कहता है

मेरा स्कूल बहुत बड़ा है

मेरा स्कूल बहुत बड़ा है। मेरे स्कूल मे एक बहुत बड़ा खेल का मैदान और तैरने का तालाब है जिसमे हमे तैराकी सिखायी जाती है। मेरे स्कूल मे प्री-नर्सरी से लेकर बारवी तक क्लास है। मेरी कक्षा मे 28 बच्चे पढ़ते है। मेरी क्लास टीचर का नाम मेघा है। वह हमे गणित पढ़ाते है। हमारे स्कूल मे बहुत सारे प्रोग्राम होते है। मै सभी प्रोग्राम मे हिस्सा लेता हू। अभी 26 जनवरी को हमारे स्कूल मे खेल दिवस हुआ था जिसमे मैने दौड़ मे हिस्सा लिया था। उससे पहले 9 दिसम्बर को वार्षिक उत्सव हुआ था जिसमे मेरे भाई ने एक नाटक मे भाग लिया जिसमे वह गाँव का बच्चा बना था और मैने उसमे डान्स किया था। उसमे हमारा स्टेज बहुत अच्छि तरह सजा था। उस दिन पूरा स्कूल सजा था और बहुत सारी लाइट लगी थी। उस दिन सभी लोगो के मम्मी-पापा को भी बुलाया था। सभी लोगो को प्रोग्राम बहुत अच्छा लगा था।

उत्कर्ष द्विवेदी
सातवी कक्षा
प्रिल्यूड पब्लिक स्कूल

प्राथमिक शिक्षक पत्रिका के बारे में

साथियों,

प्राथमिक शिक्षक पत्रिका में प्रारंभिक शिक्षा से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर आधारित ऐसे लेख प्रकाशित किए जाते है जो एक शिक्षक के लिए उपयोगी हों। इस पत्रिका के कुछ महत्वपूर्ण सरोकार हैं–

- शिक्षा संबंधी महत्वपूर्ण दस्तावेज़ों की जानकारी एवं विवेचन
- समसामयिक शैक्षिक शोध एवं अध्ययनों का विवरण
- समसामयिक शैक्षिक चिंतन
- शिक्षकों एवं शिक्षाविदों के अनुभव
- शिक्षकों एवं अभिभावकों के लिए व्यावहारिक बाल मनोविज्ञान
- शालाओं एवं शिक्षा केंद्रों की समीक्षा
- शिक्षा संबंधी खेल एवं उनकी उपयोगिता
- विभिन्न शिक्षण विधियाँ
- क्रियात्मक शोध और नवाचार
- शिक्षकों के लिए पठनीय पुस्तक के बारे में जानकारी आदि।

कैसे भेजें रचनाएँ

उपरोक्त सरोकारों पर आधारित लेख, संस्मरण, कविताएँ आदि आमंत्रित हैं। कृपया ध्यान रखें कि लेख सरल भाषा में तथा रोचक हों। शोधपरक लेखों के साथ संदर्भ साहित्य की सूची अवश्य दें। लेखों के प्रकाशन के उपरांत समुचित मानदेय की व्यवस्था है। लेखों की त्रुटिरहित टंकित प्रति अगर सी.डी. में भेज सकें तो अच्छा रहेगा। लेख ई-मेल द्वारा भी भेजे जा सकते हैं। अपने लेख निम्न पते पर भेजें–

अकादमिक संपादक
प्राथमिक शिक्षक
प्रारंभिक शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग,
नयी दिल्ली -110016
ई. मेल- deencert @ yahoo.co.in

कैसे बनें सदस्य

इस पत्रिका के सुचारु रूप से प्रकाशन, प्रचार एवं प्रसार के लिए पाठकों तथा लेखकों का सहयोग अनिवार्य है। इस संदर्भ में आपसे निवेदन है कि इस पत्रिका के स्थायी सदस्य के रूप में अपने विद्यालय, संस्थान अथवा स्वयं को पंजीकृत करवाने का कष्ट करें। इसका वार्षिक सदस्यता शुल्क केवल ₹ 260 है और प्रति कॉपी का मूल्य मात्र ₹ 65 है। आशा है आप इस दिशा में शीघ्र ही निर्णय करके विद्यालय, संस्थान अथवा निजी वार्षिक सदस्यता के लिए कार्यवाही करेंगे। वार्षिक सदस्यता शुल्क-पत्र के लिए अपना पत्र स्वनामांकित लिफ़ाफ़े सहित **बिज़नेस मैनेजर, प्रकाशन प्रभाग (एन.सी.ई.आर.टी.) श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली-16** को भेज सकते हैं।

NATIONAL UNIVERSITY OF EDUCATIONAL PLANNING AND ADMINISTRATION (NUEPA)
(Declared by the GOI under Section 3 of the UGC Act, 1956)
17-B Sri Aurobindo Marg, New Delhi-110016 www.nuepa.org

ADMISSION NOTICE 2014-15

(i) M.Phil. Programme (ii) Ph.D. Programme (iii) Part-time Ph.D. Programme

The National University of Educational Planning and Administration (NUEPA) is engaged in capacity building and research in educational policy, planning and administration. NUEPA, which is fully funded by the Ministry of Human Resource Development, Government of India, offers M.Phil., Ph.D. and Part-time Ph.D. programmes in educational policy, planning and administration from a broader inter-disciplinary social science perspective. The research programmes of NUEPA cover all levels and types of education from both national and international development perspectives. NUEPA invites applications from eligible candidates for admission to its M.Phil., Ph.D. and Part-time Ph.D. programmes for the year 2014-15. While selecting the candidates for admission, NUEPA will follow all mandatory provisions in the reservation policy of the Government of India. Admissions to M.Phil., Ph.D. and Part-time Ph.D. programmes will be made purely on the basis of merit following the prescribed criteria of the University.

Fellowships
Selected candidates for the M.Phil. shall be offered stipend and those selected for Ph.D. shall be offered NUEPA fellowship. The NET qualified candidates, who have been awarded Junior Research Fellowship by the UGC and who fulfil the required qualifications, are encouraged to apply.

Eligibility Criteria
Full-time Programmes
(a) A candidate seeking admission to the M.Phil. and Ph.D. programmes shall have a minimum of 55% marks (50% marks for SC/ST candidates and Persons with Disabilities) or its equivalent grade in Master's Degree in social sciences and allied disciplines from a recognized university. Candidates possessing Master's degree in other areas may also be considered if he/she has teaching experience or experience of working in the area of educational policy, planning and administration. (b) A candidate seeking admission to Ph.D. programme shall have an M.Phil. degree in an area closely related to educational planning and administration and/or exceptionally brilliant academic record coupled with publications of high quality. (c) M.Phil. graduates of NUEPA will be eligible for admission to the Ph.D. Programme after due scrutiny by a Selection/Admission Committee, if they obtain a FGPA of 6 or above on the ten point scale.

Part-time Programme
A candidate seeking admission to Part-time Ph.D. programme is required to meet the following criteria: (i) Should possess the educational qualifications as mentioned in Para (a) above; (ii) Currently, should be in full-time employment; (iii) Should be a senior level educational functionary with a minimum of five years work experience in teaching/research in educational policy, planning and administration.
It will be compulsory to attend one-year full-time course work by all part-time and full time candidates.

Mode of Selection
The University reserves the right to decide the number of seats to be filled in the year 2014-15; the criteria for screening of applications; and the selection procedure of candidates for admission to its M.Phil. and Ph.D. programmes. The mode of selection of candidates will be as under:

Initial short-listing of applications will be carried out on the basis of relevance and quality of the brief write-up (in the prescribed format) in the proposed area of research to be submitted along with the application form. Short-listed candidates will be required to appear for a written test and those qualifying in written test will be subjected to personal interviews to assess their motivation and potential leading to final short-listing and preparation of panel of selected candidates, in order of merit.

Candidates must be possessing the eligibility qualification and submit marks statement latest by the time of entrance examination.

How to Apply
Candidates may apply in the prescribed form for admission to M.Phil. and Ph.D. programmes of the University along with three copies of the brief write-up (in the prescribed format) on the proposed research topic of a contemporary issue within the broad framework of educational policy, planning and administration. For further details, please refer to the M.Phil.-Ph.D. Prospectus, 2014-15 of the University.

The application form and the Prospectus can be obtained from NUEPA by remitting a sum of Rs.200 (Rs.100 for SC/ST candidates) by demand draft in favour of Registrar, NUEPA, payable at New Delhi if required by Post or purchased in person. The Prospectus can also be downloaded from our website: www.nuepa.org and demand draft of Rs.200 (Rs.100 for SC/ST candidates) should be attached with the application at the time of submission to NUEPA.

Last Date of Applications
Application should reach the Registrar, NUEPA, 17-B, Sri Aurobindo Marg, New Delhi-110016 on or before 12 May 2014. For further details, please visit our website www.nuepa.org

– Registrar